ससुराल के लिए स्वर्ग और पति के लिए देवता की भारतीय अवधारणा मृणाल को पूरी तरह निचोड़ डालती है । वह नहीं चाहकर भी गृहिणी धर्म को स्वीकार करती है और अपने भाग्य से समझौता कर ईश्वर द्वारा दिए गए इस नश्वर शरीर का पति-सेवा में खपा देना चाहती है पर उसे उसके इस धर्मपालन से क्या मिलता है । -प्रताड़ना, तिरस्कार और अवमानना । वह अपने पति से अपने 'प्रेम' का सच बताकर अपने धर्म का पालन करना चाहती है, उसे विश्वास दिलाना चाहती है कि उसने कभी प्रेम किया था, पर अब तो प्रेम का आलंबन उसका पति है । इस पर पति की भौंहें टेढ़ी होती हैं और उसे घर से निस्कासित कर दिया जाता है । दुर्भाग्य की मारी मृणाल के लिए पीछे का रास्ता (मायके का रास्ता) तो पहले ही बंद हो चुका है, आगे का रास्ता भी सीधे न जाकर एक संकरी गली की ओर मुड़ जाता है । मृणाल चल पड़ती है उस संकरी गली की ओर । दुर्भाग्य उसे बुरी तरह अपनी गिरफ्त में लेता है ।

निस्सहाय, बुझी हुई-सी मृणाल अपना सामर्थ्य स्मृत नहीं करती । कमजोर महिला की तरह वह भटक जाती है । कोयलेवाले के आसरे पर वह जीने लगती है एक अँधेरी गली की अँधेरी कोठरी में । वह इतनी उदार है कि किसी के उपकार के लिए अपना सर्वस्व दान करने को तैयार हो जाती है । आत्महत्या अधर्म है, यह इससे बच जाती है क्योंकि कोयले का व्यापारी उसकी मदद करता है, पर इसे समझ नहीं पाती कि वह जो पातक करने जा रही है वह आत्महत्या से अलग नहीं है, वह उसके बजूद को ही तहस-नहस कर डालेगा । मृणाल अपनी कमजोरी छिपाने के लिए जिस दर्शन का सहारा लेती है, उसमें दम नहीं है । वह प्रमोद से कहती है "फिर जिनको साथ लेकर पति को छोड़ आई हूँ, उनको मैं छोड़ दूँ । उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं त्यागा ? उनकी करूणा पर मैं बची हूँ । मैं मर सकती थी, लेकिन मैं नहीं मरी । मरने को अधर्म जानकर ही मैं मरने से बच गई । जिसके सहारे मैं उस मृत्यु के अधर्म से बची, उन्हीं को छोड़ देने से मुझसे कहते हो । मैं नहीं छोड़ सकती । पापिनी हो सकती हूँ, पर उसके ऊपर क्या बेहया भी बनूँ ।" (पृ० 51) मृणाल अपनी कमजोरी छिपाने के लिए जिस तर्क का जाल प्रस्तुत करती है, क्या निहायत अविश्वसनीय है । क्योंकि वह जिस व्यापारी को छोड़ना नहीं चाहती, उसे ही वह उसके परिवार से मिलाने के लिए मानो प्रण करती है । मृणाल अपनी सरलता और भावुकता के कारण यहाँ भी छली जाती है । वह अपने चारों ओर जिस आदर्श का घेरा तैयार करती है, वह दृष्टि हीनता से तैयार गया-सा है । कोयले का व्यापारी वासना तृप्ति के बाद जब नींद से जागता है तो मृणाल उसे बदजात, बदकार और बाजारू औरत सी दिखाई पड़ती है । मृणाल की करूणा सेवा, समर्पण सारा कुछ बेकार हो जाता है । यह इसलिए क्योंकि मृणाल अपने जीवन में तार्किक कदम न उठाकर भावावेश में कदम आती है । भावावेश में चुनी गई उसकी दिशा उसे कहीं का नहीं रहने देती ।

सब तरफ से छली जाकर, और अपने साथ स्वयं छलकर वह भाग्यवादी हो जाती है और भगवान में आसरा ढूँढ़ने लगती है । "क्या होगा ? भगवान ही जानता है क्या होगा । मुझे और कोई आसरा नहीं है । पर भगवान सर्वांतख्यामी हैं, सर्वशक्तिमान हैं । मुझे कोई आसरा क्यों चाहिए ।" (पृ० 61)

मृणाल निरर्थक और झूठे आदर्श में जीती है । वह कोयलेवाले की सेवा पतिव्रतधर्म मानकर करती है । इस तरह के जीने में वह निरर्थकता में निरर्थक सार्थकता की खोज-सी करती प्रतीत होती है । प्रेम के कारण उसके जीवन में जो ग्रंथि पैदा होती है उस ग्रंथि में वह अपने गिर्द कुछ आदर्श गढ़कर उसी में अपने को खो देना चाहती है ।

मृणाल समाज की परवाह करती है, पर वह कैसी परवाह है कि वह अपने को इतना नीचे गिरा लेती है कि उसका प्रेमी ही उसे बाजारू (कोयले का व्यापारी) औरत समझने लगता है । वह अपराध के क्षणों में जिस आदर्श की बात करती है, वह उसके चरित्र को कहीं से भी स्वस्थ सिद्ध नहीं करता । ''तो मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती हूँ । समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ? या किसके भीतर बिगड़ेंगे इसलिए मैं उतना ही कर सकती हूँ समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती हूँ ।'' (पृ० 64) प्रश्न उठता है कि टूटे और हारे हुए के द्वारा की गई मंगलाकांक्षा क्या वास्तव में कहीं से भी उपनी सक्रिय भूमिका निभा पाएगी । कर्तव्यहीनता में मंगलाकांक्षा धोखा है, छल है । क्या बिगाड़ने वाले समाज की रक्षा करना हमारा फर्ज बनता है ? चरित्र निर्माण करनेवाले समाज की मंगलकामना की जाए, यह बात तो समझ में आती है, पर वह समाज जो पतन का रास्ता दिखाता हो, उसकी रक्षा करने ही बात कोई अस्वस्थ और मनोरोगी ही कर सकता है । सही है कि समाज का अस्तित्व नकारा नहीं जा सकता पर यह भी उतना ही सही है कि पतनोन्मुख समाज को स्वीकृत नहीं किया जा सकता है ।

मृणाल जानती है कि कायेलेवाला एकदिन उसका साथ अवश्य छोड़ेगा तब भी वह उसे अपना तन और मन दोनों समर्पित कर देती है । ''जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है, यह मेरी समझ में नहीं आता । तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूँ । तन दे सकूँगी, शायद वह अनिवार्य हो । पर लेना कैसे ? दान स्त्री का धर्म है । नहीं तो उसका और क्या धर्म है । उससे ? मन माँगा जाएगा तन भी माँगा जाएगा । सही का आदर्श क्या है ? पर उसकी बिक्री - न, न, यह न होगा ..... (पृ० 55-56) बार-बार तन देकर गर्भ धारण करना उसे लगातार कमजोर करता जाता है । वह 'देना- स्त्री धर्म मानती है । इसी झूठे स्त्रीधर्म के निर्वाह में वह अपने लिए घोर यंत्रणाओं का जाल बुनती जाती है । 'स्त्री धर्म' और 'सती' की व्याख्या उसकी अपनी है । अपने (केवल दान देना, कुछ लेना नहीं) के पालन से वह लगातार चारित्रिक स्तर पर छीनती जाती है और 'सती' के आदर्श के कारण वह किसी की छलनामयी सहानुभूति पर अपना सब कुछ जुटाने को तत्पर हो जाती है ।

मृणाल को अभिजात वर्ग से घृणा हो जाती है । वह उस समय चारित्रिक आदर्श के उत्कृष्ट बिंदु को स्पर्शित करती है जब वह कहती है ''कोई मुझे कुचले, तो मैं कुचली न जाऊँ और इतनी जीवित रहूँ कि उसके पाप के बोझ को भी ले लूँ और सबके लिए क्षमा की प्रार्थना करूँ ।'' (पृ० 65) मृणाल के इस कथन से उसकी अपार सहिष्णुता व्यक्त होती है जो उसके चरित्र को उदारता प्रदान करती है । मृणाल रौंदी जाने के बाद भी अपनी जिजीविषा सुरक्षित रखना चाहती है ताकि वह अपराधियों और दोषियों को क्षमा प्रदान कर सके । मृणाल चिंतन-स्तर पर जिस चारित्रिक उत्कृष्टता का आदर्श है, उस स्तर पर उसके चरित्र में कार्य शीलता नहीं है, नहीं हो वह सुशिक्षिता सामाजिक सेवा के लिए कोई संगठन तैयार करती या किसी सामाजिक संगठन की सदस्य होकर अपने चिंतन को सार्थक करती । पर ऐसा नहीं होता ।

मृणाल प्रतिष्ठा की भूखी नहीं है । उसे जो कुछ भी प्राप्त होता है, उसी के भीतर वह सांत्वना पाने की शक्ति की अभिलाषिणी है । (पे० पृ० 65)

मृणाल के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष उस समय दिखाई पड़ता है । जिस समय वह समस्याओं का सामना साहस

के साथ करती है और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाने के लिए तत्पर दिखाई पड़ती है । ''**हाँ मर्द के जाने के बाद वह एक-डेढ़ महीना तो वहाँ ही रही यह खबर मिली । कपड़े सीती थी और काम चलाती थी । बड़ी भली औरत थी, दुख-दर्द में ढाढ़स बँधाती थी, बच्चों को घर बिठाकर पढ़ाया करती थी और सबके छोटे-मोटे काम को तैयार रहती थी, ...**''(पृ० 69)

प्रेम में विफल मृणाल अपने साथ घोर अन्याय करती है । इस स्थिति में मृणाल कुंठाग्रस्त होकर निरूद्देश्य भटकती है । पर वह जहाँ स्वस्थ मन एक होकर चुनौतियों का सामना करती है और समाज के साथ अपने को जोड़ती है वहाँ वह पाठकों को अपने चारित्रिक विश्वास में बाँध लेती है ।

मृणाल दुर्भाग्य के थपेड़े खा रही है, और न जाने किनते थपेड़े उसे खाने हैं । जीवन को वह परीक्षा मानती है । वह उत्तीर्ण होती या अनुत्तीर्ण उसकी परवाह किए बिना वह परीक्षा दे रही है । मूल्यांकन समाज के हाथों में है, पर उस समाज के हाथों में नहीं जिसे अभिजात या भद्र समाज कहते हैं । वह तथाकथित अभद्र लोगों के बीच रहती है । वह उनकी बुझती-जगती इंसानियत के भरोसे जीवन-यापन करती है । दुर्जन (अभद्र) लोगों की सद्भावना ही उसकी पूँजी है । अभद्र असभ्य और दुर्जन समझे जानेवाले लोगों के भीतर दूध-सी श्वेत सद्भावना का सोता रहता है । जिसे छूते ही वह फूट पड़ता है और छूनेवाले को तृप्त कर देता है । मृणाल के जीवन का भटकाव यहाँ समाप्त हो जाता है, अब वह वहाँ से उखड़ना नहीं चाहती । क्योंकि मृणाल का अनुभव है कि उस समाज में छल नहीं है, भीतरी मनुष्यता है, वहाँ अकृतिम सदाचार है और खरा सौनापन है ।'' यहाँ खरा कंचन ही टिक सकता है, क्योंकि उसे जरूरत नहीं है कि वह कहे मैं पीतल नहीं हूँ । यहाँ कंचन की माँग नहीं है, पीतल से परहेज नहीं है । इससे पीतल रखकर ऊपर कंचन ही दीखनेवाला लोभ यहाँ छन-भर नहीं टिकता है'' (पृ० 81)

मृणाल प्रतिक्रिया में अभिजात्य कृत्रिमता को पूर्णत: त्याग चुकी है । वह खरा सोना बन गई है । वह सहज सदाचार, सच्चाई, सहानुभूति, स्नेह और इंसानियत की प्रतिमूर्ति बनकर तथाकथित दुर्जनों की दुनिया में अपने प्राण त्याग देती है । अभिजात दुनिया से बहिष्कृत मृणाल लगातार भटकती हुई और लगातार परीक्षा देती हुई अभद्रों के सच्चे परिवेश में अपने जीवन की सार्थकता ढूँढ लेती है । उसकी मृत्यु एक प्रश्न चिह्न बन जाती है कि मनुष्य के मूल्यांकन का आधार क्या हो । अभिजात वर्गीय मानसिकता से प्रताड़ित, प्रेम की विफलता में मृणाल जिस ग्रंथि में जीने लगती है, वहाँ उसे केवल भटकाव ही मिलता है । वह अपने अहँ-प्रेरित भटकाव में जिन सिद्धांतों को लेकरआगे बढ़ती है, उनसे उसके व्यक्तित्व की गोपीनयता और विस्तृत होती जाती है, पर अंत में वह जिस तथाकथित अभद्रों और दुर्जनों के समाज में अकृत्रिम जीवन का सुख प्राप्त करती है, वह उसे और आगे भटकने से बचा लेता है । उसे आत्मतोष और अपूर्व शांति प्राप्त होती है ।

जैनेंद्र की मृणाल के चरित्र में चाहे हम जितनी दुर्बलताएँ निकालें पर इस उपन्यास को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि जैनेंद्र की विशिष्ट दृष्टि ढोनेवाली यह चरित्र अपनी पीड़ा के कारण आकर्षक नहीं हैं ।

3.3.2 प्रमोद का चरित्र चित्रण

'त्यागपत्र' उपन्यास में प्रमोद का चरित्र गत्यात्मक है । वह एक झूठ में जीता है और अंत में उस झूठ के ज्ञान से अपने को मुक्त करता है । वह अनुभव-सत्य की ओर उन्मुख होर अपनी जड़ प्रवृत्ति पर कठोर आघात

करता है ।

प्रमोद को बचपन से ही अभिजात संस्कार प्राप्त हुआ है । उसने समृद्धि को ही जीवन का सत्य माना है और वह उसे ही प्राप्त करने को प्रयत्नशील है ।

वह उसे प्राप्त भी करता है । प्रमोद के चिंतन के दो पक्ष हैं - एक तो वह समाज की विषमताओं को देखता है और उनके बारे में सोचता है, दूसरे- वह उनकी प्रतिक्रिया के रूप में समाधान की तलाश में बेचैन होता है । उसे अहसास है कि समाज विषम है उस विषमता का एक अंग वह भी है यानी वह आदमी न होकर जग है ।'' (डॉ. रामदरश मिश्र, हिं० उ०:एक अंतर्यात्रा, पृ० 84)प्रमोद की प्रवृत्ति समाजजेमुख है । उसका आत्मविसर्जन समजोन्मुखता ही है । वह व्यक्ति अहं से मुक्त होकर समाज के लिए सोचता है ।

प्रमोद के प्रेम में घनत्व है । वह बुआ से बेहद प्रेम करता है । बुआ के लिए वह कुछ कर नहीं पाता, उसी पश्चात्ताप में वह जजी से त्यागपत्र दे देता है । प्रमोद संन्यासी बन जाता है । मेरी दृष्टि में प्रमोद का जजी से अपना त्यागपत्र दाखिल करना उसकी निर्बलता का द्योतक है । प्रमोद का यह कदम नकार ही प्रस्तुत करता है । अपने कर्तव्य से विमुख होकर समाज की विषमता को दूर करने का यह उपाय नकरात्मक है । जज होते हुए भी वह सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए आत्म-सत्य से गुजरकर बहुत कुछ कर सकता था, पर वह ऐसा नहीं करता ।

प्रमोद अतिशय भावुक है । बचपन में उसकी भावुकता बुआ के प्रेम-संदर्भ में बार-बार हमारे सामने आती है । भावुकता के कारण ही वह प्रौढ़ावस्था में जजी से त्यागपत्र दे देता है । प्रमोद का संपूर्ण व्यक्तित्व भावुकता, प्रेम और करुणा के तीन रंगों से निर्मित हे । करुणा उसे वैचारिक स्तर पर सामाजिक बनाती है, यहाँ वह समाज की विषमता के बारे में चिंतन करता है । भावुकता उसे एक प्रकार से पलायनवादी बनाती है और प्रेम उसके जीवन में जीने का अर्थ देता है ।

प्रमोद के चरित्र के दो अंग हैं किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था । किशोरावस्था में प्रमोद अत्यंत भावुक है । वह बुआ से समर्पित प्रेम करता है । वह बुआ पर अपना अधिकार जताता है । बीच में फूफा आते हैं तो उसका बालमन प्रतिकार करता है । उसके भीतर अनेक प्रश्नभर जाते हैं । जब वह बड़ा होता है तब वह सांसारिक आर्तनाद, सामाजिक संस्था (विवाह आदि) नियति (भवितव्य) नियति बनाम पुरुषार्थ, सामाजिक मूल्य, सामाजिक परिवर्तन आदि के संबंध में विचार करता है । उसके विचारों की प्रेरणा मृणाल बुआ की विवशता और मूल्यहीन जीवन-यात्रा से मिलती है । वैचारिक स्तर पर प्रमोद कहीं-कहीं दार्शनिक उलम्बन में इस तरह फँस जाता है कि उसके चिंतन में द्वंद्वात्मक स्थिति पैदा हो जाती है । जैसे- ''ओ जगत्पिता तेरी लीला के नीचे यह सब अर्तनाद क्या है ? लीला तेरी है, जीते-मरते हम हैं । क्यों जीते हैं क्यों मरते हैं । हमारी चेष्टा, हमारे प्रयत्न क्या हैं ? क्यों हैं ?-पूछे जाओ, उत्तर कोई नहीं मिलता । फिर भी उत्तर नीरव भाषा में सदा मुखरित है । भीतर उत्तर है, बाहर भी सब कहीं वह लिखा है । जो जानता है, पढ़े । जो जैसा जानता है वैसा ही पढ़े, वह उत्तर कभी नहीं चुकता । अधिकतर सृष्टि स्वयं में उत्तर ही तो है । अपने प्रश्न का वह आप ही उत्तर है ।'' (पृ० 50) ।

प्रमोद मानवीयता और सामाजिक संदर्भों में जब चिंतन करता है तब उसकी व्यवहारिक दृष्टि विश्वसनीय लगती है, उसमें शुष्क दार्शनिक जटिलता नहीं होती । प्रमोद (प्रौढ़ प्रमोद) कहता है- "मैं अपनी अर्थ प्रतिष्ठा के ढूह पर बैठा हूँ, वह कृत्रिम है, क्षणिक है । हृदय वहाँ कहाँ हैं यज्ञ वहाँ कहाँ है ? लेकिन वही सबकुछ मुझे ऊँचा उठाए हुए है । नाम वकील रहा, अब जज हूँ । लोगों को जेल-फाँसी देता हूँ, समाम जें माननीय हूँ । इस सबके समाधान में चलो, यही कहो कि यह कर्मफल है, लेकिन सच पूछो तो मेरा जी जानता है कि वह जजी के इतने मोटे शरीर में क्या राई जितनी भी आत्मा है ? मुझे उसमें बहुत संदेह है । मुझे मालूम होता है कि मैं अपने को खो सका हूँ तभी सफल वकील और बड़ा जज बन सका हूँ ।" (पृ०41)प्रमोद के मुख में जैनंद्र ने अपनी वाणी रखी है । प्रमोद में लेखक का प्रक्षेपण हुआ है । इसलिए प्रमोद जहाँ दार्शनिक वक्तव्य देता है, वहाँ प्रमोद का चरित्र कम उपन्यासकार की दृष्टि ही ज्यादा महत्वपूर्ण होती है ।

प्रमोद जब आत्मा की वात करता है तब यह साफ हो जाता है कि वह मानवमूल्यों, नैतिकता, मानवीयता और प्रेम को महत्व दे रहा है, भौतिक समृद्धि और सांसारिक प्रतिष्ठा आत्मा के प्रतिकूल होती है । प्रमोद उसे गर्हित स्थिति मानता है । प्रमोद का चरित्र यहाँ शरद् ऋतु के खुले आसमान की राह आकर्षक है ।

समाज में समृद्धि को अपेक्षित महत्व दिया जाता है । आत्मा की उज्ज्वलता और ईमानदार चरित्र की उतनी पूछ नहीं होती । इस गर्हित स्थिति पर प्रमोद को क्षोभ होता है । समाजकी जिस मान्यता पर मैं ऊँचा उठा हुआ खड़ा हूँ वह स्वयं किसके बलिदान पर ,खड़ी है, इस बात को जितना ही समझकर देखता हूँ, उतना ही मन तिरस्कार और ग्लानि से घिर जाता है । पर क्या करूँ ? सोचता हूँ, उस समाज की नींव को कुरेदने से क्या हाथ आएगा ? नींव ढीली ही होगी और ऐसे हाथ आनेवाला कुछ नहीं है । यह सोच लेता हूँ और रह जाता हूँ।" (पृ०41) प्रमोद का चिंतन कितना सार्थक है : समाज के ऊपर चढ़ बढ़कर मैं उसे दबा सकता हूँ, बदल नहीं सकता । उसके फलने-फूलने का तो एक ही उपाय है, वह यह है कि मैं अपने को समाज की जड़ों में सींच दूँ । अज्ञात रहकर सच्चा बनूँ, झूठा बनकर नामवर होनो में क्या धेरा है ? ओह, वैसी नामवरी निष्फल है, व्यर्थ है, निरी रेत है । आत्मा को खोकर सम्राज्य पाया तो क्या पाया ? वह रत्न को गँवाकर घूल का ढेर पाने से भी कमतर है ।" (पृ० 41) प्रमोद के भीतर आभिजात्स संस्कार, आभिजात्य आचरण और आभिजात्य प्रदर्शन के विरुद्ध एक हलचल-सी उठती है । वह सामाजिक विषमता की जड़ में भद्रलोक की दृष्टि को ही प्रमुख मानता है । सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए समाज की जड़ में व्यक्ति के विसर्जन को प्रमोद अनिवार्य मानता है । व्यक्ति का अहं विगलित होकर जब समाज की जड़ को सींचने लगे तो उस परिस्थिति में समाज की विषमता का नामोनिशान नहीं रहेगा । व्यक्ति का समष्टि के लिए समर्पण हो विषमता दूर कर सकता है । "सचाई तो छटा बनने में है । बलि बनने में हैं बहुत-कुछ पढ़ा है, लेकिन वह सब झूठ है । सच इतना ही है कि प्रेम के भार से भारी रहकर जो जीवन के मूल में पैठ है, धन्य है । जो गर्व में फूला उस जीवन की फुनगियों पर चहक रहा है, वह भूला है ।" (पृ० 41) प्रमोद का यह दर्शन बहुत ऊँचा है, उतना व्यवहार्य नहीं दीखता, पर है आत्मानुभव के आधार पर बहुत सच्चा । मृणाल बुआ के प्रति उसका प्रेम ही उदात्त होता है और वह प्रेम को जीवन का मूल तत्त्व मानने लगता है जिसकी प्राप्ति से मानव धन्य हो उठता है । प्रेम, आत्मविसर्जन और लघुता का यह त्रिकोणात्मक दर्शन उसे व्यक्ति मोह से अलगकर समष्टि-आसक्ति से जोड़ता है । इस दर्शन से प्रमोद के व्यक्तित्व का अपेक्षित विस्तार होता है ।

वेदना प्रमोद की पथप्रदर्शनक है । प्रमोद मानता है कि वेदना (दर्द /ही मानव की मानस-मणि है जिसके सतत प्रकाश में उसका गतिपथ उज्ज्वल होता है, मानव इस वेदना के अभाव में जिंदगी-भर भटकता रहता है, उसका उसे लक्ष्य प्राप्त नहीं होता । प्रमोद का यह आत्मिक अनुभव है कि वेदना 'अहं' को तोड़ती है व्यप्टि की संकीर्णता को समाप्त करती है और मानव को लघुता से मुक्त कर विराट से (समाज से) जोड़ती है । सामाजिक विषमता तभी टूटेगी जब सबके भीतर वेदना का, दर्द का सच्चा स्पंदन हो । वेदना ही मानव को सार्थक करती है । वेदना के आभाव में मानव अपवनी क्षुधा-तृष्णा, राग-द्वेष, मान-मोह में भटकता फिरता है, यहाँ जाता है, वहाँ जाता है । पर असल में वह कहीं भी नहीं जाता एक ही जगह पर अपने ही जुए में बँधा कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारता रहता है ।'' (पृ० 42) प्रमोद वेदना को जीवन की विभूति इसिलिए मानता है, क्योंकि यही स्वार्थ के संकीर्ण परिवृत्त को तोड़कर मानव को निस्स्वार्थ बनाती है । निस्वार्थ वृत्ति मानव को फैलने का अवस्र देती है और मानव इस बल पर कृतकृत्य होता है ।

प्रमोद के लिए भीतर का दर्द उसका इष्ट और आधार है , क्योंकि यही दर्द ज्ञान और सत्य की पहचान पैदा करता है । यह दर्द न हो तो मनुष्य का सारा ज्ञान आडंबर है, घोखा है । दर्द के अभाव में संगृहीत सत्य अहंकार की प्रति-छाया है । ''धन न चाहूँ, मन चाहूँ । धन मैल है । मन का दर्द अमृत है । सत्य का निवास और कहीं नहीं है । उस दर्द की साभार स्वीकृति में से ज्ञान की और सत्य की ज्योति प्रकट होगी । अन्यथा सब ज्ञान ढकोसला और सब सत्य की अहंकार है ।'' (पृ० 42)

वेदना का यह दर्शन लेखका (उपन्यासकार) का ज्यादा है, प्रमोद का कम । लेखक ने ही अपनी बात प्रमोद से कहलवाई है । इस दार्शनिक वक्तव्य के सामांनांतर प्रमोद के चरित्र में सक्रियता का भाव प्रकट होना चाहिए था, तब कहीं प्रमोद के चरित्र का वैशिष्टय प्रकट होता । चौथे परिच्छेद में लगभग चार पृष्ठों में जैनेंद्र ने अपना दर्शन प्रमोद से कहलवाया है । उससे कथानक क्षतिग्रस्त एवं अव्यवस्थित हुआ है एवं प्रमोद का चारित्रिक वैशिष्ट्य 'कथनी' के धुंधलके में निष्क्रिय हो गया है ।

ऐसे लोग जो ''जगत् की कठोरता का बोभ स्वेच्छापूर्वक अपने ऊपर उठाकर चुपचाप चले चलते हैं और फिर समय आने पर इस धरती माता से लगकर उसी भाँति चुपचाप सो जाते हैं (पृ०42) प्रमोद के लिए प्रणक्य हैं चाहे वे समाज के एक वर्ग द्वारा (अभिजात वर्ग द्वारा)' 'पापी' और 'अभागा' क्यों न माने जाएँ । प्रमोद के उपर्युक्त वक्तव्य से मृणाल का चरित्र भी खुलता है । मृणाल बुआ के संदर्भ में ही उपर्युक्त वक्तव्य आया है ।

प्रमोद प्रेम को हर हाल में निष्पाप और पवित्र मानता है । प्रेम उस पवित्र गंगा की तरह है जिसमें ढेर-सारी गंदगी मिलकर भी उसे मैला नहीं करती । मृणाल के प्रति प्रमोद का प्रेम हमेशा एक समान रहा है । मृणाल भले ही भटकी आत्मा हो, पर उसके हृदय मे प्रमोद के लिए प्रेम परम पवित्र है, प्रमोद भी मानता है कि मृणाल बुआ का प्रेम इतना पवित्र है कि उसके समक्ष स्वर्ग के द्वार खुल सकते हैं । मृणाल बुआ के प्रति ऐसी श्रद्धा और आस्था प्रमोद के चरित्र को बहुत ऊपर उठा देता है ।

प्रमोद के चरित्र में एक अंतर्द्वद्व है । पति-गृह को छोड़कर गंदे व्यभिचार में रहनेवाली नारी पति-धर्म की बात करती है और प्रमोद उसे लाक्षित नहीं करता, बल्कि उसके प्रति उसमें रिवचाव पैदा होता है । (पृ० 62)

इससे उसके भीतर द्वंद्व का ज्वार उठता है-आखिर ऐसा क्यों होता है उसके साथ बी०ए० का छात्र प्रमोद सोचने लगता है "उनकी (बुआ की) मति उलट गई है । वह नहीं सुधरना चाहतीं तब मैं उन्हें क्यों सुधारूँ । और तो और, मुझे उसमें शंका होने लगी है कि सुधार की जरूरत उनमें है कि मुझमें । यह शंका असह्य ही थी ।" (पृ० 62) जैनेंद्र ने प्रमोद के द्वारा बुआ की अव्यवस्थित कोठरी को साफ करते दिखाया है । इस बहाने जैनेंद्र ने प्रमोद के मनोविज्ञान को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है । प्रमोद विषमता से घृणा करता है, उसे ववस्था प्यार से है । वह झाड़ू लेकर बुआ की अव्यवस्थित कोठरी को ठीक करने लगता है । यानी मानस स्तर पर वह बुआ की अंधकारपूर्ण कोठरी को अपनी चेष्टा से उज्ज्वल करना चाहता है, उसकी गंदगी को साफ करना चाहता है उसकी अव्यवस्था को मिटाना चाहता है ।

प्रमोद के चिंतन में उस समय विरोध दिखाई पड़ता है जब वह एक जगह अपनी बुआ से कहता हैं कि वह समाज की परवाह नहीं करता (पृ०64) और दूसरी जगह वह अपने को समाज की जड़ों में खींचने की बात करता है (पृ०41) मन के उद्‌गार परिस्थितियों के वश में होते हैं । अत:, प्रमोद के विरोधी चिंतन से उसके चरित्र की जटिलता का नहीं, अपितु उसकी स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं । वह अज्ञात रहकर सच्चा बनना चाहता है, झूठा बनकर नामवर होने से वह बचना चाहता है ।

प्रमोद मृणाल से प्रभावित होकर और बहुत कुछ स्वानुभुतियों से यह जान गया है कि लघुता में सत्य होता है सरल और समान्य बनने में ही जीवन सार्थक होता है । प्रेम के प्रतिदान में जीवन की कृतार्थता है, प्रमोद इसे मृणाल बुआ के मृत्योपरांत समझ जाता है । इसी वजह से वह जजी से त्यागपत्र देता है, उसी वजह से वह अपनी स्वर्गवासी बुआ को वचन देता है- "बुआ, तुम गई । तुहारे जीते जी मैं राह पर न आया । अब सुनो, मैं यह जजी छोड़ता हूँ । जगत् का आरंभ-समारंभ ही छोड़ दूँगा । औरों के लिए रहना तो शायद नए सिरे से मुझसे सीखा न जाए, आदतें पक गई हैं, पर अपने लिए तो उतनी ही सरलता से रहूँगा, जितना अनिवार्य होगा । यह वचन देता हूँ । (पृ०87)

प्रमोद की जीवनयात्रा अभिजात वर्गीय संस्कारों से प्रारंभ होती है और अंतिम पड़ाव पर आकर सरल-सामान्य मानवों के स्वभाविक आचरण और सहज चिंतन पर ठहर जाती है । प्रमोद के चरित्र का यही उन्नयन है । दूसरों के जीने की यही पहली राह है ।

3.3.3. अन्य पात्र

इतर पात्रों के संबंध में देखें पृ० 41से44 तक ।

3.4 सारांश

प्रस्तुत पाठ में 'त्यागपत्र' उपन्यास के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है । साथ ही, लघु पात्रों का भी चारित्रिक वैशिष्ट्य उकेरा गया है ।

3.3 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. **मृणाल का चरित्र -चित्रण प्रस्तुत करें ।**

2. **प्रमोद की चरित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालें ।**

3. **चारित्रिक वैशिष्ट्य रेखांकित करें :**

मृणाल का पति, कोयले की दुकान वाला, मृणाल के बड़े भैया, मृणाल की भाभी ।

3.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही उत्तर का संकेताक्षर लिखें ।

1. मृणाल के भतीजे का नाम था

(क) प्रमोद (ख) प्रणय (ग)प्रवीण (घ) प्रकाश उत्तर (क)

2. प्रमोद की बुआ थी

(क) मृगनयनी (ख)मृणाल (ग)मनीषा (घ) प्रमोद उत्तर-(ख)

3. किसने जजी से त्यागपत्र दे दिया ?

(ग) प्रशांत (ख) प्रज्ञान (ग) प्रतनु (घ) प्रमोद उत्तर-(घ)

4. मृणाल की मृत्यु हुई

(क) गंगा के किनारे (ख) शहर के होटल में (ग) गंदी बस्ती में (घ) अस्पताल में उत्तर-(ग)

3.7. संदर्भ ग्रंथ

1. **हिंदी सहित्य का इतिहास सं. डॉ. नगेंद्र**

2. **हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास डॉ. बच्चन सिंह**

4. **हिंदी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा: डॉ. रामदरश मिश्र**

1. उपन्यास के महत्वपूर्ण व्याख्या के अंश और उनकी व्याख्या
2. लघु उत्तरीय प्रश्न एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य है 'त्यागपत्र' की कुछ महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या करना ।

4.2. महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्याख्या:

1. विवाह की ग्रंथि दो के बीच की ग्रंथि नहीं है, वह समाज के बीच की भी है । चाहने से ही वह क्या टूटती है । विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं है । वह प्रश्न क्या यों टाले टल सकता है ? वह गाँठ है जो बँधी कि खुल नहीं सकती । टूटे तो टूट भले ही जाए, लेकिन टूटना कब किसका श्रेयस्कर है ?'' (पृ0 25)

प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'त्यागपत्र' उपन्यास से लिया गया है । इसके रचनाकार हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार एवं चिंतक जैनेंद्र कुमार हैं ।

प्रमोद की बुआ की शादी प्रौढ़ व्यक्ति से की जाती है । ब्याह के आठ-दस महीने के बाद बुआ एक नौकर को साथ लेकर घर (मायेक) चली जाती है । संभवत: उन्हें पति से सद्भाव के स्थान पर अपमान और तिरस्कार मिला है । प्रमोद बुआ को पाकर प्रसन्न होता है । वह बुआ को फिर फूफा के घर जाने नही देना चाहता, क्योंकि बुआ ने ही उसे बताया है कि उन्हें पति का घर पसंद नहीं है ।

प्रमोद आज वकील है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है । वह जब विवाह संस्था पर विचार करता है तब उसे उसकी जटिलता का भान होता है । उसने तो बचपन में बड़ी आसानी से बुआ को कह दिया था-''वह जगह नहीं पसंद है, तो वहाँ न जाएँ, बस'' (पृ०25)पर, आज जब वह चिंतन करता है तब उसे लगता है कि विवाह कोई खेल नहीं हैं, यह विचित्र प्रकार का बंधन है जिसमें स्त्री.पुरुष और समाज तीनों बँधे होते हैं ।

प्रमोद यह साफ देखता है कि हिंदू समाज में, (विशेषत: अभिजात धर्म में) विवाह संस्था अत्यंत जटिल है । इसमें केवल स्त्री के बीच पुरुष की ही ग्रंथि नहीं हे अपितु समाज के बीच की भी ग्रंथि हैं । इसमें एक साथ स्त्री, पुरुष और समाज बँधे हुए हैं । विवाह केवल स्त्री-पुरुष का ही बंधन नहीं है, समाज का भी बंधन है । समाज इस बंधन से अपने को मुक्त नहीं रख सकता, क्योंकि उसका अस्तित्व इसी बंधन से सार्थक है । हिंदू समाज में विवाह ऐसा बंधन है जिसमें स्त्री-पुरुषस्फबार बँधकर हमेशा के लिए बँध जाते हैं, चाहकर भी उसे तोड़ नहीं पाते । विवाह से जुड़ा प्रश्न भावुकता का नहीं है, व्यवस्था का है । स्त्री-पुरुष और समाज को

व्यवस्थित करने के लिए ही इस वैवाहिक संस्था का निर्माण हुआ है । विवाह का संबंध भावुकता से ही होता, तब तो इसे आसनी से तोड़ा जा सकता है पर यह तो व्यवस्था और सामाजिक मर्यादा के साथ जुड़ा है, अत: उसे तोड़ना मुश्किल है । यह ऐसी गाँठ है कि एक बार बँध जाने पर खुलना असान नहीं है ।

प्रमोद विवाह संस्था पर विचार करता हुआ इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि किन्हीं परिस्थितियों में यह गाँठ टूट जाती है तो इससे किसी को भी भला नहीं होता । उसे गांठ के छूट जाने से स्त्री-पुरुष दिशाहीन जीवन यात्रा के लिए विवश होते है । इससे केवल वेही बर्बाद नहीं होते, समाज के सामने भी अनेक गर्हित समस्याएँ उत्पन्न होती हैं ।

प्रस्तुत गद्यांश में हिंदू समाज की वैवाहिक संस्था की वास्तविकता का गंभीर विश्लेषण हुआ है । प्रमोद का यह विश्लेषण बुआ के वैवाहिक जीवन की विफलता के दुष्परिणामों पर आधृत है ।

2.4.2.2 बहुत कुछ जो इस दुनिया में हो रहा है, वह वैसा ही क्यों होता है, अन्यथा क्यों नहीं होता-इसका क्या उत्तर है। उत्तर हो अथवा न हो, पर जान पड़ता है भवितव्य ही होता है । नियति का लेख बँधा है । एक भी अक्षर उसका यहाँ से वहाँ न हो सकेगा । वह बदलता नहीं, बदलेगा नहीं । पर विधि का यह अतर्क्य तंत्र किस विधाता ने बनाया है- उसका इसमें क्या प्रयोजन है यह भी कभी पूछकर जानने की इच्छा की जा सकती है या नहीं ? " (पृ040)

प्रस्तुत व्याख्योय गाद्यांश जैनेंद्र कुमार रचित प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' के चतुर्थ परिच्छेद से लिया गया है ।

प्रमोद मृणाल का प्यारा भतीजा है । वह अपनी मेहनत से जज के पद पर आसीन है । उसे समाज में प्रतिष्ठा मिली है। पर वह जब उपनी बुआ की जीवनयात्रा की विडंबना पर विचार करता है तब उसके भीतर एक टीस-सी उठती है । वह दार्शनिक की मानसिकता में अपने बारे में, बुआ के बारे में, समाज के बारे में, जगत् की लीला के बारे में सोचने लगता है ।वह अपनी सोच में नियतिवादी प्रतीत होता है ।

प्रमोद के भीतर एक प्रश्न घुमड़ता है इस संसार में जैसा घट रहा होता है, उससे भिन्न क्यों नहीं घटता । वह इस निष्कर्ष पर आता है कि शायद ऐसा भवितव्य और नियति के लेख के कारण ही होता है । वही होता है जो होना होता है । यही भविष्य है । वही होता है जो नियति चाहती है । प्रमोद का प्रश्न है कि आखिर इस तरह की नियति और भवितव्यता का निर्माण किसने दिया । क्या इन दोनों की ऐसी उप्रतिरोध्य शक्ति के पीछे विधाता का कोई प्रयोजन है ? यदि ऐसा कोई प्रयोजन है तो क्या इस प्रयोजन को जानने की कोई इच्छा कर सकता है या नहीं ?

प्रमोद के भीतर उपर्युक्त दार्शनिक चिंतन मृणाल बुआ की दयनीय एवं गर्हित स्थिति के प्रभाव में उत्पन्न हुआ है । यदि प्रमोद ने मृणाल बुआ की अपेक्षित सहायता की होती, तो शायद उनकी वैसी स्थिति नहीं हुई होती । पर, लगता है कि यह नियति का लेख था, जो मिट नहीं सकता था; प्रमोद ने मृणाल बुआ के प्रेम का प्रतिदान अपनी उदार प्रवृत्ति से नहीं किया, जितना उसे करना चाहिए था; उतना नहीं किया उसने अपनी प्यारी और श्रद्धेया बुआ के लिए । शायद यही भवितव्य था बुआ का यही नियति थी बुआ की ।

3.4.2.3 ''इस सबके समाधान में चलो, यही कहो कि यह कर्मफल है लेकिन सच पूछो तो मेरा जी जानता है कि वह कैसे कर्मों का फल है ।..मुझे मालूम होता है कि मैं अपने को खो सका हूँ तभी सफल वकील और बड़ा जज बन सका हूँ ।'' (पृ०41)

प्रस्तुत गद्यावतीण प्रख्यात कथाकार जैनेंद्र कुमार रचित उपन्यास 'त्यागपत्र' के चतुर्थ परिच्छेद से लिया गया है ।

मृणाल का प्यारा भतीजा प्रमोद कामयाब जज है । वह मृणाल बुआ की अपेक्षित सहायता नहीं करता, उसका उसे घोर पश्चात्राप है । मृणाल बुआ की कष्टपूर्ण जीवनयात्रा की जिस्मेवारी प्रमोद की भी है । वह मर्माहत होकर अपने व्यक्तित्व की समीक्षा करता है और पाता है कि वह मानवीय मूल्यों, नैतिक आदर्शों और इंसानियत से कोसों दूर है । उसने अपनी आत्मा का तिरस्कार किया है और मन के आकर्षक, पर भ्रामक आदेशों के पालन में अपनी कृतर्थाता समझी है । उसने अपने वास्तविक अस्तित्व को निरादृत किया है । उसने अपने को मिटाकर जो अर्जित किया है, वह क्षणस्थायी है, कृत्रिम है, कसक और गुमान से पूर्ण है ।

प्रमोद ही जानता है कि कैसे-कैसे कर्म किए हैं उसने तब वह सफल जज के रुप में समाज में प्रतिष्ठित है । उसे अपनी झूठी प्रशंसा, भौतिक समृद्धि और हृदयहीन कृत्रिम जीवन-शौली से गलानि होती है । इन सबसे प्रमोद ऐसा अनुभव करता है, मानो वाह बर्बाद हो गया हो ।

जीवन यात्रा में हृदय और दूसरों से जुड़ाव ही महत्त्वपूर्ण होता है । भौतिक समृद्धि और मिथ्या प्रशंसा ने उसे इंसान नहीं रहने दिया है । वह अपने को पहचानने में असमर्थ है । जो अपने को नही जान सका, वह 'सत्य' तक नहीं पहुँच सकता । प्रमोद को इस बात का दु:ख है कि उसने अपने को खोकर जो कुछ प्राप्त किया है वह किसी काम का नहीं । प्रमोद को ग्लानि है कि उसने महत्त्वपूर्ण के स्थान पर तुच्छ को पाने का प्रयास किया है ।

4.2.4.4. ''समाज के ऊपर चढ़-बढ़कर मैं उसे दबा सकता हूँ, बदल नहीं सकता । उसके फलने-फूलने का तो एक ही उपाय है, वह यह कि मैं अपने को समाज की जड़ों मैं सींच दूँ । अज्ञात रहकर सच्चा बनूँ, झूठा बनकर नामवर होने में क्या धरा है ? ओह, वैसी नामवरी निष्फल है, व्यर्थ है, निरी रेत है । आत्मा को खोकर समाज पाया तो क्या पाया ? वह रत्न को गाँवाकर धूल का ढेर पाने से भी कमतर हैं । (पृ० 41)

प्रस्तुत गद्यावतरण जैनेंद्र विरचित प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' से उद्धृत है ।

प्रमोद कहता है कि समाज में जो लोग समृद्ध, प्रतिष्ठित और ऊँचे माने जाते हैं, उनसे समाज परवर्तित नहीं हो सकता । ऐसे लोगों से समाज प्रभावित अवश्य होता है, पर वह उनकी प्रेरणा से परिवर्तित नहीं हो सकता । समाज के विकास के लिए आवश्यक है कि लोग ईमानदारी के साथ समाज के लिए आत्मबलिदान करें, उसकी जड़ों को आतम्बलिदान से सिंचित करें । सच्चा और ईमानदार बनना ही महत्त्वपूर्ण है । झूठा बनकर नाम कमाना बेकार है । झूठ से कमाया हुआ नाम व्यर्थ होता है, यह स्थायी नहीं होता । प्रशंसित होने के लिए किया गया प्रयास बेकार होता है । इससे अच्छा है अज्ञात रहकर अपना कर्तव्यनिर्वाह करना सत्विक और सच्चा बनना ।

प्रमोद अपने जीवनानुभव के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा है एक झूठ की बुनियाद पर रखा गया नामवरी का महल व्यर्थ होता है । झूठी नामवरी निष्फल और व्यर्थ होती है । वह रेत के समान होती है जिसमें कोई सच्च नहीं होता । आत्मा को खोकर संगृहीत संपति बेकार होती है । ऐसी संपत्ति धूल से भी धूल गई-बीती होती है । प्रमोद ने अपनी आत्मा की आवाज नहीं सूनी, वह हमेशा धन कमाने की धुन में लगा रहा । वह ध न जोड़ता रहा और उसकी आत्मा हीजती रही । ऐ दिन उसे अससाह हुआ कि उसके कोई आत्मा ही नहीं, वह सहज आस्था-सांस मज्जा का पुंज है । अपनी इस गर्हित स्थिति पर उसे घोर गलानि और पश्चात्ताप होता है ।

प्रमोद अनुभव करता है कि आत्मा ही महत्वपूर्ण है । आत्मा को खोकर हम जो कुछ अर्जित कतरे हैं, वह किसी काम का नहीं होता । जिस यश में आत्मा की सुरांध व्याप्त नहीं होती, क्या यश निष्फल,व्यर्थ निरर्थक होता है, उस रेत के समान होता है जिसमें उत्पादकता नहीं होती । आत्मा रत्न के समान है और नामवरी धूल से भी कम महत्वपूर्ण है ।

4.2.4 ''सच इतना ही है कि प्रेम के भार से भारी रहकर जो जीवन के मूल में पैठ ळे, धन्य है जा गर्व में फूला उस जीवन की फुनहियाँ पर चहक रहा है, वह भूला है ।' (पृ० 41)

प्रस्तुत गधावतरण जैनेंद्र कुमार लिखित उपन्यास 'त्यागपत्र' से लिया गया है ।

कुछ ऐसी बातें हैं जो प्रमोद के जी में बराबर घुमड़ती रहती है । वे अनुकूल वायु का सहारा पाकर सुलग पड़ती हैं जिनकी लौ के प्रकाश में उसे जीवन का 'सत्य' साफ दिखाई पड़ने लगता है । उसे उस समय इस सत्य का पता चलता है कि नामवरी ओर संपति के लिए अपनी आत्मा को मारना बड़ा पातक है । इससे बड़ा कोई झूठ नहीं है । आश्चर्य है कि अज्ञानतावश लोग झूठ के पीछे पागल बने रहते हैं । भौतिक समृद्धि और निरर्थक यश के पीछे लोग इस तरह पागल बने रहते हैं कि उन्हें इसका पता ही नहीं चलता कि वे अपनी आत्मा को मार रहे हैं । आत्मा रूपी रत्न को खोकर वे धूल के कम्भ महत्वपूर्ण के लिए चैष्टाए रहते हैं ।

प्रमोद के आत्मनुभव के प्रकाश में इस सत्य का पता चलता है हक जो प्रेम के भार से भारी होकर जीवन के मूल में पैठते हैं उसका ही जीवन धन्य होता है । जिसमें गर्व होता है, वह जीवन के मूल में पैठ ही नहीं सकता, वह तो जीवन की सतह पर होता है । वह अहंकार में जीवन की फुनगियों पर ही चहकता होता है । गर्व इसे जीवन के मूल में पैठने ही नहीं देता । मौलिक संपत्ति और झूठी नामवरी के चलते वह जीवन के मूल्य के सत्य से सर्वथा अपरिचित हो सकता है । जीवन के मूल तक उसी की पहुँच हो पाती है जिसमें प्रेम का भार है । प्रेम व्यक्ति में गुसता पैदा करता है जिसकी वजह से वह जीवन की गहराई में छिपे सत्यों की पहचान कर पाता है । धन-संग्रह करने और यश कमाने के चक्कर में पड़े हुए लोग भले ही अपने को विशिष्टता भरने, पर वे बहुत हलके होते हैं, वे जीवन की सतह पर ही तैरते रह सकते हैं । तथाकथित समृद्ध और समाज में प्रतिष्ठित लोग अपनी समृद्धि और प्रतिज्ञा के गर्व में अपने को भले ही धन्य समझें और यह समझें कि वे समाज रूपी कूल की फुनगी पर (ऊँचाई का) विराजमान हैं पर वासविकता यह है कि वे आत्मसत्य के अभाव में बहुत छोटे हैं । समृद्धि और प्रतिष्ठा प्रेम के अभाव में व्यर्थ है ।

प्रमोद का यह कथन उसके आत्मानुभव का सार है उसके जजी में अपने को इस कदर यथा पिया है कि मृणाल बुआ के निस्पृह प्रेम के प्रतिदान के लिए उसके पास कुछ भी नहीं है । उस सत्य से परिचित होने के बाद उसके भीतर ग्लानि और पश्चात्ताप की जो आग सुलगती है, वह उसमें बुरी तरह झुलस रही है ।

प्रस्तुत गधावतरण में प्रमोद के आत्मानुभव का स्तर प्रस्तुत किया गया है । प्रमोद के इस चिंतन में दृष्टि की शुझलता नहीं, अपितु अनुभव की प्रेरक साक्षरता है ।

4.2.5 ''पूछता हूँ, मानव के जीवन की गति क्या अंधी है ? वह अप्रतिरोध्य है । पर अंधी है, यह तो मैं नहीं मानूँगा । मानव चलता जाता है और बूँद-बूँद दर्द इक्ट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता है । वही सार है । वही जमा हुआ दर्द मानस-मणि है उसके प्रकाश में मानव का गतिपथ उज्जवल होगा । नहीं तो चारों ओरी गहन वन है । की ओर मार्ग-माहे में भटकता फिरता है । यहाँ जाता है, वहाँ जाता है । पा असल में वह कहीं भी नहीं जाता है, एक ही जगह पर अपने ही गुरु में बद्दधा कोल्हू के बैल की तरह चक्केकर मारता रहता है ।'' (पृ० 42)

प्रस्तुत गधाकरण जैनेंद्र कुमार के प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' के चतुर्थ परिच्छेद से लिया गया है । इसमें प्रमोद के जवीन-दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है । उपन्यास का चतुर्थ परिच्छेद वाला आठ पृष्ठों का है जिसमें प्रमोद के जवीन-दर्शन की अभिव्यक्ति में उपान्यासकार लगभग चार पृष्ठ खर्च की हैं । प्रमोद का जीवन-दर्शन जैनेंद्र कुमार के अपने जीवन दर्शन का एक प्रकार से प्रक्षेपण ही है ।

प्रमोद का मानना है कि मानव के जीवन की गति को प्रतिरूद्ध नहीं किया जा सकता । वह मानव के जीवन की गति को अंधा नहीं मानता । प्रत्येक मानव स्वविवेक से आगे बढ़ता है । मानव अपनी जीवन-यात्रा में आगे बढ़ता जाता है और उसके भीतर बूँद-बूँद दर्द इकट्ठा होता जाता है । वह ज़मा हुआ दर्द मानव के लिए मानस-मणि है । उस मणि का प्रकाश भी बुझता नहीं । वह उसी के प्रकाश में अपनी राह तय करता है । मानरव जिस पथ पर आगे बढ़ता है उस पथ को उसका दर्द संघनित मानस-मणि सतत आलोकित करता रहता है । यदि ऐसा नहीं होता तो मानव जीव-यात्रा में सर्वत्र फैले गहन वन अधंकार में अपना मार्ग मूल जाता, अपनरी क्षुध-तृष्णा, माहे-माया और मान-प्रतिष्ठा के जाल में फँसकर अपना अनमोल जीवन व्यर्थ कर देता । यह तो उसके दर्द से निर्मित मानस-मणि का आलोक ही है कि वह उसे सुरक्षित रखता है और उसे भटकाव से बचाता है । मानव अपने स्वार्थ के कारण कोल्हू के बैल की तरह एक ही जगह चक्कर मारता रहता है । उसकी आँखों पर पट्टी होती है, उसे यहपता ही नहीं होता कि वह आगे नहीं जा रहा है, एक जगह बार-बार आकर एक वृत्त पूरा कर रहा है । उसके जीवन में कोई विकास नहीं, केवल निसद्देश्य भटकाव है ।

प्रस्तुत अवतरण में दर्द को जीवन के लिए महत्वपूर्ण माना गया है । कहा गया है कि दर्द ही मानव का पथ-प्रदर्शक होता है । 'दर्द' के अभाव में मानव स्वार्थ और संकीर्ण मनोवृत्ति का दास हो जाता है । उसकी वास्तविक प्रगति प्रतिसद्ध हो जाती है । वह चलता तो है, पर उसका चलना निरुद्देश्य और व्यर्थ होता है । प्रमोद मन के 'दर्द' को अमृत मानता है जो मानव को करने नहीं देता, उसे अमरत्व प्रदान करता है । मानव अपने दर्द के मणि के आलोक में अपनी समस्त जड़ता से मुक्त होकर अपना अपेक्षित विस्तार कर लेता है । वह तब अपने लिए नहीं जीता, उसका जीवन दूसरों के लिए समर्पित हो जाता है ।

प्रमोद को ऐसा प्रतीत होता है कि उसके भीतर 'दर्द' का मानसमणि निर्मित नहीं हुआ है, तभी तो उसने

अपनी मृणाल बुआ के लिए कुछ नहीं किया । वह प्रतिष्ठा और समृद्धि के लिए असत् कर्मों के पीछे भागता रहा । उसका सत् कर्म हो था 'दर्द को संगृहीत करना, उसके आलोक में अपनी सही पहचान पाना ।

4.2.6 "अगर मैं चाहता हूँ तो यह यह है कि भीतर का दर्द मेरा दूष्ट हो । धन न चाहूँ, मन चाहूँ । धन मैल है । मन का दर्द अमृत है । सत्य का निवास और कहीं नहीं है । उस दर्द के साभार स्वीकृति में ज्ञान की और सत्य की ज्योति प्रकट होगी । अन्यथा सब ज्ञान ढकोसला है और सब सत्य की प्रकार अहंकार है ।" (पृ० 42)

प्रस्तुत गाद्यांश जैनेंद्र कुमार प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' के चतुर्थ पतिच्छेप से लिया गया है । इस गद्याश में प्रमोद ने 'र्दद' के महत्त्व का निष्पण किया है ।

प्रमोद 'दर्द' को इष्ट बनाना चाहता है । वह धन को मैल मानता है और चंतना (मन) को सर्वस्व समझता है । इसलिए वह मन को प्राप्त करने की चाह रखता है । मन में पत्य रहा 'दर्द' अमृत के समान होता है । सत्य इसी 'दर्द' में निवास करता है । जिसके मनमें 'दर्द' नहीं होता, उसे सत्यानुभूति नहीं हो सकती मन का 'दर्द' ही सत्य का कपाट खोलता है । सत्य एक दृष्टि है जो स्वार्थ की संकीर्णता को तोड़कर परामार्श के विस्तृत प्रागणा की ओर उनमुख होती है और पट तभी संभव है जब किसी व्यक्ति के मन में दर्द, पीड़ा और संवेदना हो ।

'दर्द' से ज्ञान होता है और ज्ञान में सत्य की ज्योति डालती है । 'दर्द' से विरत व्यक्ति ज्ञानहीन होता है, उसे सत्य्य की मूलक नहीं मिलती । 'दर्द' के अभावमें ज्ञान शास्त्रीय होता है और शास्त्रीय ज्ञान ढकोसला होता है । 'दर्द' से इतर माध्यम के द्वारा प्राप्त ज्ञान अहंकार पूर्ण होता है । जहाँ अहं है वहाँ आत्मबिसर्जन संभव नहीं होता । आत्मविसर्जन सत्य की प्राप्ति का सही माध्यम है । इसके लिए सत्य प्राप्ति की कल्पना नहीं की जा सकती । मन था 'दर्द'आत्माविसर्जन के लिए प्रेरित करता है । और उसी की प्रेरणा से व्यक्ति को सत्य का प्रकाश प्राप्त होता है ।

प्रमोद अपने को मन में 'दर्द' का अभाव है । उसने जिस सत्य का संग्रह किया है, वह सवानुभूति संवेदना और दर्द से प्राप्त नहीं है । वह नितांत शास्त्रीय है जिसमें उसका अहंकार हमेशा स्फीत पुकार करता रहता है । शायद इसी अहंकार ने मृणाल बुआ के लिए यथोचित नहीं करने दिया । प्रमोद को इसी का पछताप है ।

4.2.7 "जो जगत की कठोरता का बोझ सवेच्छापूर्वक ऊपर उठाकर चुपचाप चले चलते हैं और समय आने पर इस धरती कता से लगकर उसी भाँति चुपचाप सो जाते हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूँ । मैं इनको अभागा कह लूँगा, पापी भी कलहूँगा, लेकिन मैं उनको प्रणात करता हूँ ।" (पृ० 2)

प्रस्तुत गद्यांश महारी पाठ्यपुस्तक 'त्यागपत्र' उपन्यास से उदकृत हैं । उस उपन्यास के रचनाकार जैनेंद्र कुमार है । प्रस्तुत अंश 'त्यागपत्र' के चतुर्थ परिच्छेद से लिया गया है । इस अंश में उनकी महिमा का बखान किया गया है जो जागती की कठोरता का बोझ स्वेच्छापूर्वक अपने उठाकर चुपचाप गतिशील रहते हैं और समय आने पनर बिना किसी शिकायत या गलानि के इस दुनिया से क्रय कर जाते हैं ।

प्रमोद ऐसे लोगों को प्रणम्य समझता है जो संसार का बोझ स्वेच्छापूर्वक अपने ऊपर लेकर अपनी जीवनयात्रा में आगे बड़ते रहते हें और कर्त्तव्यभाव से उस बोझ का वहन करते हैं । प्रमोद ऐसे लोगों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है जो संसार की कठोरता का बोझ चुपचाप उठाए चलते हैं, उसके विरुद्ध उनके भीतर

कोई शिकायत नहीं होती, वे उस बौझ को कर्तव्यभाव से वहन करते हैं । संसार में ऐसे लोगों को अभागा और पापी समझा जाता है, पर प्रमोद की दृष्टि में ऐसे लोग श्रद्धा के पात्र हैं । ऐसा इसलिए, क्योंकि ऐसे लोग दिखावटी आचरण नहीं करते । इस संसार में प्राय: ऐसे ही लोग हैं । लोग हैं जो करते हैं कम और प्रचार करते हैं ज्यादा प्रमोद ऐसे प्रदर्शन प्रिय लोगो के प्रति आदरभाव नहीं रखता, क्योंकि ऐसे लोगों से संसार का कल्याण नहीं होता ।

प्रमोद अपनी मृणाल बुआ की यादनीय एवं गर्हित चित्र के बारे में जब कभी सोचता है, तब उसे ऐसा प्रतीत होता है कि मृणाल बुआ की इस स्थिति के लिए अवश्य ही कोई जिम्मेवारी है । प्रमोद यह जिम्मवारी न तो विद्याता को पता है और न किसी और को । वह मृणाल बुआ की गर्हित स्थिति के लिए अपने ही दोषी मानता है । प्रमोद की दृष्टि में मृणाल बुआ ऐसी है जो समाज में अकेले निकल पड़ी है । उन्हें किसी से शिकायत नहीं है । वे शांत भाव से समाजप्रदत्त कष्टों को सहन करती हूई जीवन व्यतीत कर रही है । वे समाज से अलग होकर उसकी भंगनाकांक्षा में स्वयं को तोड़ती चलती है । अत: प्रमोद के लिए बुआ आदरनीस और प्रणम्य हैं । दुनिया भले ही उन्हें अभागिन और पापी कहे, पर प्रमोद का हृदय उसे स्वीकार नहीं करता । वह बुआ के प्रति हमेशा अपनी श्रद्धा निवेदित करता है ।

4.28 मैं समाज को तोड़ना फोड़ना नही चाहती हूँ । समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे । या कि किसके भीतर बिगड़ेंगे इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ ।'' (पृ० 64)

प्रस्तुत गद्यारतण हमारी पाठ्यपुस्तक 'त्यागपत्र' शीर्षक उन्पयास षष्ठ परिच्छिेद से लिया गया है । उस उपन्यास के रचनाकार । उपन्यासकार जैनेंद्र कुमार हैं ।

प्रमोद की शादी की बातचीत चल रही है । प्रमोद बुआ से भेंट करता है । बुआ परिव्यव्वत्ता होकर कायले की दुकान चलाने वाले के साथ तंगगली की तंग कोठरी में गुजर-बसर कर रही है । प्रमोद बुआ को अपनी शादी में आने का आमंत्रण देता है । मायके और पति द्वारा ठुकराई गई बुआ बदनामी के बीच जीवन-यापन कर रही है । उसे पता है कि तथाकथित समय ओर अभिजात कहलाने वाला समाज उसे किसी रूप में स्वीकार नहीं कर सकता । यह प्रमोद को कहती है कि मैं तुम्हारी शादी में कैसे आ पाऊँगी । इस पर प्रमोद बुआ से कहता है कि तुम्हें मेरी शादी में अवश्य आना है, चाहे जैसे आओ । तुम भले हि समाज के डर से मेरे आमंत्रण को ठुकराओ, पर मुझे समाज की कोई परवाह नहीं है । प्रमोद के इस कथन के बाद ही बुआ कहिथन उपन्यास के षष्ठ परिच्छेद में आता है ।

प्रमोद भले ही समाज की परवाह न करता हो, पर मृणाल को है । इसके दो कारण है एक तो वह नारी है और दूसरे यह उसकी अपनी प्रवृत्ति है । उभयुक्त कथन नारी से ज्यादा मृणाल की अपनी दृष्टि से संबद्ध है । मृणाल की दृष्टि में व्यक्ति के अस्तित्व के लिए समाज की अनिवार्यता है । अत: वह समाज को तोड़ने फोड़ने की बात भी नहीं सोच सकती । क्योंकि यदि समाज नहीं रहा तो उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा । समाज को टूट जोन की स्थिति में व्यक्ति का बना रहना असंभव है ।

मृणाल का कथन यहाँ तक तो एकदम सही है । पद जब मृणाल कहती है या कि जिसके भीतर बिगडेंगे ?''- यह कथन जरूरी होकर भी ग्रहण करने योग्य नहीं है । हाँ, यह सही है कि समाज में ही हम

बनते-बिगडते हैं, पर 'समाज' के स्वरूप की चर्चा के क्रम में हम समाज से अपने विकास में सहयोगी होने की ही बात करते हैं । कोई समाज में बिगड़ने की इच्छा नहीं रखता । हम समाज से अपने बिगड़ने की अपेक्षा नहीं रखते ।

मृणाल समाज के टूटने की नहीं, अपने टूटने की बात करती है । वह कहती है कि मैं समाज से अलग होकर उसकी कल्याण. कामना करूँगी । मैं स्वयं टूटती रहूँगी, पर चाहूँगी कि समाज, टूटे प्रमन उठता है कि मृणाल का समाज से अलग होना थ्या कभी संभव है ? वह जहाँ होगी वहीं समाज होगा । साधु-सन्यासी 'समाज' से अलग हो सकते हैं, फिर भी उनका भी एक समाज होता है ।

अपने को तोड़ना और समाज की कमल-कामना करना मृणाल के चरित्र को एक प्रकार से उत्कर्ष की ओर से जाता है, इस कथन से मृणाल की उदारता सहिष्णुता और चरित्रिक वस्तृति का बोध होता है । अपने को कष्टों मे डालकर भी उसके लिए मंगलकामना करना जिसने उसे कष्टों में डाला है, सचमुच बहुत बड़ा आदर्श है । ऐसा आदर्श तो मनुष्य को देवता बना देता है । मृणाल का यह कथन उसे मनुष्य से देवता बना देता है ।

सूक्ष्म विवेचना के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि मृणाल ने यहाँ 'समाज' शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थ में नहीं वह विशेष अर्थ में यानी अभिजात समाज के लिए ही किया है । मृणाल अभिजात समाज अपने पीहर से कटकर एक अलग समाज का अंग बन गई है । वह वहाँ अनेक प्रकार की विपत्तियों का सामना करती है, फिर भी वह केवल प्रमोद के लिए उस अभिजात समाज के टूटने का स्वपन नहीं देखती । केवल प्रमोद के लिए ही क्या चाहती है कि वह अभिजात समाज बना रहे और उसमें प्रमोद सुरक्षित रहे । ''तुम्हारा (प्रमसेद का) प्रेम खोना मुझे असहय होगा । अगर अब मथ्य वर्ग के लोगों में से किसी को जानती हूँ तो तुम्हें जानती हूँ । न अब मुझे ही कोई जानता है, पर तुम्हारे अकेले के कारण में उस तमाम भद्र वर्ग को अप्रेम करने से बची हूँ.....जिस समाज में तुम हो, क्या तुम्हारे रहते मैं उसके लिए तिरस्कार कर सकती हू..''(पृ० 82)

4.2.9 वालई वाला सदाचार यहाँ खुलकर उधड़ रहता है । यहाँ खता कंचन ही टिक सकता है, क्योंकि उसे जरूरत नहीं है कि वह कहे मैं पीतल नहीं हूँ । यहाँ कंचन की माँग नहीं है, पीतल से परहेज नहीं है । उससे पीतल रखकर ऊपर कंचन दीखनेवाला लोभ यहाँ छन भर नहीं टिकता है, बल्कि यहाँ पीतल का मूख्य है । इससे सोने के चौथे की यहाँ परीक्षा है, सच्चे बंधन की पलवी परश्व रहीं है ।'' (पृ० 81)

प्रस्तुत गधावतरण 'त्यागपत्र' के अष्टम परिच्छेद से सिया गया है । 'त्यागपत्र' के रचयिता हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेंद्र कुमार है ।

मृणाल दुर्भाग्यवश अभद्रजनों के बीच रह रही है । भद्रधुल की मृणाल को जब बहुत करीब से 'अभद्रजनों' के समाज को देखने और समझने का अवसर मिलता है, तबवह उसव समाज की विशेषताओं से परिचित होकर आश्चर्य विमूढ़ हो जाती है । मृणाल में उस समाज के प्रति श्रद्धा हो आती है । वह कहती है जिन लोगों के बीच बसी हूँ, वे समाज की जूठन हैं और कौन जानता है कि वे जूठन होने के योग्य भी नहीं हैं । लेकिन आखिर तो इंसान है और यह बात जबकि उनके बीच आ पड़ी हूँ, मैं साफ देखती हूँ, मैं किसी भी और बात पर अब जिंदा नहीं रहना चाहती हूँ । उनकी बुझती और जागती इंसनियत के भरोसे ही रहना चाहती हूँ । दर-दर भटकी हूँ और मैंने सीखा है कि दुर्जन लोगों की सद्भावना के सिवा मेरी कुछ और पूँजी नहीं हो सकती । (पृ० 80)

मृणाल समाज के जूठ स्वरूप लोगों के बीच रहकर यह जान सकी है उनके भीतर सद्भावना का अक्षुण्ण

सोता विराजमान है । उस समाज में हल का नामोनिशान नहीं है । सच्चाई उसकी नस-नस में भरी है । उस समाज में बाहर-भीतर भी । तथाकथित सम्य और अभिजात समाज में जो बाबर है, वह भीतर नहीं है और जो भीतर है, वह बाहर नहीं है । समय समाज में सच्चरित्रता नहीं होती, वह प्रदर्शित की जाती है । वहाँ मनुदयता नहीं होती वह दिखाई जाती है । उस समाज में छल अनिवार्य है ।

मृणाल अभद्रजनों के समाज के संबंध में कहती है कि यहाँ दिखावटी सदाचर (कलईवाली सदाचार) नहीं होता । कलईवाला सदाचार यहाँ खुलकर उघड़ रहता है । यहाँ खरा कंचन ही होता है, कचन को 'पानी' वहीं होता । उस समाज में झूठ नहीं चलता । कोई पीतल है तो वह अपने को पीतल ही कहता है, सोना नहीं । यहाँ लोग कंचन (धन-दौलत) के पीछे नहीं भागते । अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति होने से ही वे परमसंतुष्टि का अनुभव करते हैं । यहाँ के लागों को परहेज हैं । यहाँ के लोग 'कलाई' की चमक में नहीं जीते, आत्मा के आलोक में जीते हैं ।

मृणाल ने अभिजात वर्गीय समाज और निम्नवर्गीय समाज, दोनों का अनुभव प्राप्त किया है । अत: वह उसने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर दोनों समाजों की तुल्नात्मक समीक्षा करने में समर्थ है । वह दोना समाजों के परीक्षण के पश्चात् यहकहने में समर्थ है कि सभ्य समाज में कृत्रिमता होती है ओर विभावर्गीय समाज में अकृत्रिमा । सभ्य समाज में प्रदर्शनप्रियता होती है जबकि तथाकथित निम्नवर्गीय समाज में विश्छलता होती है । पीतल को कंचन बनाकर प्रस्तुत करने का लोभ यहाँ नहीं है । यानी यहाँ की तरह ही दीखता है और उसका उस समाज में मूख्य है । 'पीतल' अपने को यहाँ सोना नहीं कह सकता । 'सोना' होने का मतलब यहाँ बेकार सोना है, चह नहीं कि भीतर पीतल है और अपर सोने की कलई या 'पानी' है । अत: यदि सोना अपने को स्तेना कहता है, तो यहाँ उसकी परश्व भीतर और बाहर दोनों तरफ से ही जाती और उस परीक्षण के बाद ही खरा उतरले पर उसे 'सोना' की संज्ञा दी जाती है । सच्चे कंचन की सही परख नहीं होती है । सभ्य समाज में यह कहा दुख्कर कार्य है, क्योंकि वहाँ बाहर भीतर एक समान नहीं होता । भीतर पीतल होता है, पर बाहर सोने का मुलम्मा चढ़ा होता है । लोग उस मुलस्मे (आवाज) कोरी सत्य मान लेते हैं ।

11 अभ्यासार्थ प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रमोद की बुआ पापिष्ठा थी । उस पर अपना विचार रखें ।
2. प्रमोद की बुआ मृणाल । के चरित्र में प्रेम विषय पर अपनी राय है ।
3. प्रमोद और मृणाल के बीच के प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालें ।
4. मृणाल के पति के संबंध में अपनी धारणा व्यक्त करें ।
5. कोयले के दुकान वालो पर टिप्पणी लिखे ।
6. मृणाल अपनी दुर्गति के लिए स्वयं जिम्मेदार है । इस विषय पर अपनी राय प्रस्तुत करें ।
7. मृणाल की दृष्टि में सत्य और असत्य समाज के स्वरूप पर विचार करें ।
8. मृणाल जिस अंधी गली में रहती है, उसकी तस्वीर प्रस्तुत करें ।
9. विवाह के संबंध में प्रमोद की धारणा पर प्रकाश डालें ।

10. 'त्यागपत्र' में आए दार्शनिक वक्तव्यों के संबंध में अपनी क्या राह है ? स्पष्ट करें ।

11. 'त्यागपत्र' की भाषा पर एक निबंध लिखें ।

12. 'त्यागपत्र' में कथानक पहले बहुत संदर गति से आगे बढ़ता है, पर चतुर्थ परिच्छेद से इसमें अवानक तीव्रता आ जाती है । उसकी राय में यह उपन्यास कला को दृष्टि से सही या नहीं चालू करें ।

13. मृणाल के चरित्र के सामाजिक पक्ष का उद्‌घाटनर करें ।

14. मृणाल के चरित्र में आपकी दृष्टि में कुछ परिवर्तन होना चाहिए था । इस पर उसने विचार प्रस्तुत करें ।

15. 'मृणाल और प्रमोद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । इस पर आय अपना । विचार रखें ।

16. प्रमोद जजी से त्यागपत्र दे देता है । क्या आप प्रमोद के इस कार्य संतुष्ट हैं ? पक्ष का विपक्ष में अपने विचार रखें ।

17. प्रेमचंद और जैनेंद्र की औपचारिक कला के अंतर पर प्रकाश डालें ।

वस्तुनिष्ट प्रश्न

सही उत्तर का संकेताक्षर लिखें ।

1. प्रमोद ने त्यागपत्र दे दिया-

(क) वकालत से (ख) प्राध्यापक पद से

(ग) जजी से (घ) इनमें से किसी से नहीं । उत्तर (ग)

2. मृणाल अपनी जीवनयात्रा के अंतिम पड़ाव पर कहाँ रहती है ।

(क) पहाड़ी प्रदेश में (ख) अशिष्ट समाज में

(ग) अस्पताल में (घ) विद्यालय के हॉस्टल में उत्तर-(ख)

3. क्या सत्य है ?

(क) प्रमोद शादी शुदा था (ख) उसके दो लड़के थे ।

(ग) उसके एक पुत्री थी । (घ) प्रमोद की शादी नहीं हुई थी उत्तर-(घ)

4. मृणाल 'जूठन' का प्रयोग किसके लिए करती है ?

(क) बचा-खुचा अन्न (ख) जूठा किया गया अनन

(ग) समाज के निम्वर्गीय लोग (घ) इनमें से कोई नही उत्तर-(ग)

[भारत की श्रेष्ठ कहानियाँ]

रेवती [फकीर मोहन सेनापति उडिया कहानी]

5.1 उद्येश्य

प्रस्तुत पाठ में उड़िया कहानी 'खेती' कहानी-कला की दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत की जाएगी ।

5.2 परिचय

'खेती' शीर्षक कहानी उड़िया काहनीकार फकीर मोहन सेनापति द्वारा लिखी गई है । फकीर मोहन सेनापति उड़िया साहित्य के मूर्धन्द साहित्यकार हैं । इनकी कथाकृतियों में सामांजिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है ।

5.3 विस्तार

कहानी का कथानक प्रस्तुत कहानी सामाजिक जड़ता और उस जड़ता से संघर्ष कर जीवन को नय स्वरूप देने के संकल्प की कहानी है । इस काहनी में संकल्प का तेज, प्रेम की गुप्त अमृतधारा, चारित्रिक ईमानदारी अंधविश्वास का निर्मम बंधन, अशिक्षा का उपरिनाम और दुर्भाग्य का कठोर खेल पुरी संवेदनात्मक ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त है । यह कहानी घटना-प्रकाशन कहानी है । घटनाओं के बीच यह कहानी अपनी स्वरूप चाल में प्रवाहित है, जैसे समतल क्षेत्र में प्रवाहित हो ।

वासुदेव जड़ता के अधंकार को तोड़ने का प्रयास करता है, खेती जड़ता के लिए है लड़ने को तत्पर होती है, पर दुर्भाग्यवश वासुदेव आधार कथन के शाल में चला जाता है और खेती भी अपने दिवंगत माता-पिता एंव वासुदेव के लिए होती बित्थवही इस संसार से विदा लेता है । बची रहती है तो खेती की दादी बुढ़या जो मानती है कि नरियों को नहीं पढ़ना चाहिए नारियाँ विद्या-प्रति के लिए प्रयास करेंगी तो वे दुर्भाग्य चक्र में अवश्य फँसेगी, क्योंकि परंपरा को तोड़ना अवशकुन होता है । औंरतों के विद्या पढ़ने से कुल का नाश होता है । रेवती की दादी भी एक दिनर इस दुनिया कसे कूद कर जाती है । पड़ोसियों ने सात के पहले प्रहर में ही बार सुना है अरी रेवती री रेवी अरी बुलनासी, री भद्रमुँही ।''

कटक जिले के (उड़ीसा में) हरिहरपुर नामक हलके के पाटपुर गाँ में श्यामबंधु महंति कहते हैं । वे जमींदारी की जमा पर्ची लिखनेवालों में से एक हैं । उन पर पारपुर का दायित्व सौंपा गया है । मुंशीणी के नाम से प्रसिद्ध श्यामबंधु, मदांति की कुल मासिक आय दर रुपए के आसपास है । मासिक वेतन हो जाए तथा रसीद बनाने और सही देने आदि से महीने में दो रुपए के आसपास के इन पैसों उनकी गृहस्थी वार में कुल चार जने हैं-बूढ़ी माँ, पत्नी, वस-बारह बास की एक लड़की (रेवती) और स्वयं अपने मुशीजी संघा समय बहरी बरामदे पर बैठकर वे भजन गाते हैं और कभी-कभी उड़िया भागवत का पारायण करते हैं । उनकी पुत्री उनके पास बैठकर आगवत कथाा सुनती है । वह रोज भजन जाती है । उसकी आवाज अत्यंत सुशीली है । मुंशीजी अपनी पुत्री के मुख से भजन सुनकर बहुत खुश होते हैं ।

पाटपुर में शिक्षा-विभाग के डिप्टी इंस्पेक्टर साहब को सिफारीश से एक प्राथमिक विद्यालय की स्थापना

होती है । उसमें कटक क़े नार्मली स्कल के प्रशिक्षित एक शिक्षक आता है । शिक्षक का नाम वासुदेव है । उसकी अवस्था बीस इक्कीस के आसपास है । शरीर गठीला है और चेहरा सुंदर और आकर्षक । वह जाति का कायस्थ है और मुंशीणी (श्यामबंधु मदांति) जी भी कायस्थ हैं लड़कपन में ही माता-पिता की छत्र-छाया छिन जाने के कारण उसका पालन-पोषण ननिहाल में मामा के संरक्षण में हुआ है ।

तीज-त्योहारों के अवसर पर श्यामबंधु स्कूल में जाकर वासुदेव को अपने घर आने का आमंत्रण देते हैं । वासुदेव को मुंशीजी के यहाँ जाना अच्छा लगता है । वह वह रोज शाम को मुंशीजी के पास कुछ देर के लिए बैठता है । रेवती वासुदेव को भैयाजी कहती है और उन्हें पुराने भजन गा-गाकर सुनाती है । दोनों में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण पैदा होने लगता है । वासुदेव और मुंशीजी रेवती को पढ़ाना तय करते हैं । मुंशीजी की बूढ़ी माँ को यह अच्छा नहीं लगता । वह उसका विरोध करती है । वह कहती है'' रसोई बनाना सीख, दूध-दही मलाई सँवारना सीख, पढ़ाई से क्या मिलेगा ? माँ के विरोध के बावजूद मुंशीजी अपनी पुत्री को पढ़ाने के लिए तैयार हो जाते हैं । रेवती इस शुभ समाचार से फूले नहीं समाती ।

वासुदेव रेवती की पढ़ाई में मदद करता है । वह सीतानाथजी की पहली किताब की एक प्रति लाकर देता है । रेवती किताब की तसवीरों को देखकर बहुत खुश होती है । वह माँ और दादी को किताब दिखाती है । दादी उस किताब को देखकर झल्ला जाती है । वसंत की तिथि को वासुदेव सूर्योदय के कुछ समयबाद शुभ वेला में विकारंभ आरंभ कर देता है । वह रोज रेवती को शाम के समय पढ़ाने लगता है । रेवती पढ़ने में तेज है । बहुत शीघ्र वह बहुत कुछ पढ़ लेती है ।

मुंशीजी रेवती और वसुदेव को प्रणय -सूत्र में बाँधना चाहते हैं । रेवती को यह बात मालूम होती हे तो उसके भीतर एक परिवर्तन नजर आने लगता है । वह सपने बननु में व्यस्त हो जाती है । अब वह 'वासु से पढ़ते वक्त चुप-चाप सी रहती है, सिर्फ हाँ-हूँ कर देती हैं बीच-बीच में । पढ़ाई समाप्त होती है हँसी को भरसक छुपाती हुई अंदर चल देती है । रोज शाम को बाहरी द्वार पर किवाड़ क पास खड़ी-खड़ी किसी की प्रतीक्षा करती है । वासु को आते देख अंदर भाग जाती है । पाँच बार बुलाने पर भी नहीं निकलती । घर की देहरी के बाहर कभी पाँव रखती है तो उसका दादी विगड़ने लगती है ।

दो वर्षों के पश्चात् फागुन में अचानक हैजा फैलता है । वह पहले मुंशीद श्यामबंधु महांति को निगलता है और फिर रेवती की माँ को इस पर भी उस निर्मम हैजा को संतोष नहीं होता तो वह वासुदेव को निगल जाता है । मुंशी जी की माँ जिन्दा है । वह रेवती को उस दुर्भाग्य का कारण समझाने लगती है । वह दिन-रात रेवती को कोसती रहती है, गालियाँ बकती रहती है । वह कहती है कि रेवती के विघा पढ़ने को कारण ही मेरा बेटा मरा, बहू मरी, नौकर हटा बैल बिके, जमींदार ने गाएँछीन लीं । रेवती 'कुलच्छिनी' की दोशनी (कुलक्षिणी), कुचाली और 'कुलनासी' है । मरी आँखें की रोशनी भी रेवती की पढ़ाई के कारण ही चली गई । उसने रवेती को विद्या पढ़ाकर मूर्खत की, अन्यथा वह कभी नहीं मरता ।

वासुदेव की मृत्यु से रेवती अत्यंत मर्महत होती है और घर के एक कोने में जा पड़ती है । बूढ़ी रेवती को आपास नहीं देखकर गालियों का पहाड़ा पढ़ने लगती है । वह गुस्से में तमतमाती हुई हमेशा कहती फिरती है-''अरी देवती, रेवी री, अरी भाड़मुँही !''

रेवती को तेज बुखार होता है । बूढ़ी का मानना है कि उसके बुखार का कारण पढ़ाई ही है । छह दिनों

से रेवती ने एक घूँट पानी नहीं पिय है । उसके पेट में अन्न के दाने नहीं है । दरिद्रता ने दो प्राणियों के उस परिवार को ध्रता पूर्वक दबोच रखा है । बूढ़ी छेदवाला एक लोटा लेर हरि साहू की दुकान पर जाती है कि उसे बेच कर चावल-दाल-नमक लाएगी । रेवती चावल-पात्र खाकर कहीं ठीक हो जाए ! हरिसाहू पहले लोटा नहीं लेता पर कुछ दयावश और कुछ व्यववस्थवश वह लोटा के बहाने सेर भर चावल, पावभर दाल और थोड़ा-सा नमक दे देता है । बूढ़ी घर आती है । दधर रेवती का सन्निपात ज्वर तेजी से बढ़ने लगता है । सारे शरीर में यथानक दर्द प्राप्त हो जाता है और धीरे-धीरे उसके शरीर का ताप घटने लगता है । वह लोट घसीट कर कमरे से बाहर आती है, पर उसे चैन नहीं मिलता वह दीवार से सटकर बैठ जाती है । सामने बागीचा है । उसमें कले ओर अमरूद के पेड़ है । माँ ने अमरूद का पौधा लगाया है ।

प्रतिपाद्य

5.3.2 श्यामबुधु महांति का पूरा परिवार मृत्यु को समर्पित हो जाता है । कहान त्रासदी की कहानी है । इस काहनी के सब पात्र त्रासदी की छाया में धीरे-धीरे गुम हो जाते हैं । इस कहानी की त्रासदी है अंधविश्वास, अशिक्षा और दरिद्रता । अशिक्षा त्रासदी की मूल है । अशिक्षा नहीं होती तो अंधविश्वास का अंधप्रभाव परविार पर नहीं होता, वहाँ गरीबी भी नहीं होती । यह कहानी अत्यंत व्यंजनापूर्ण है । रेवती को विद्या पढ़ाना, पिता और वासुदेव का रेवती की विद्या के लिए प्रयत्नशील होना उसी त्रासदी को तोड़ने का संकेत है । इस कहानी की व्यंजना यह भी है कि अंधविश्वास विध्वंसक होता है । बूढ़ी अंधविश्वास की प्रतीक है । वह सबको समाप्तकर अंत में अपने मरती है । अंधविश्वास की प्रतीक बूढ़ी का अंत में मरना यह संकेत करता है कि भारत की परतंत्रता की जड़ अंधविश्वास अब शीघ्र समाप्त होगा और नई आस्था और विश्वास के साथ जीवन अपने विवेकपूर्ण कर्मपथ पर अग्रसर होगा ।

5.4 कहानी'कला की दृष्टि से 'रेवती' शीर्षक कहानी की समीक्षा

कथानक, पात्र, संवाद, वातावरण, उद्देश्य और भाषा-शिल्प के सामंजस्य से सफल कहानी की रचना होती है । जिस कहानी में उपर्युक्त तत्त्वों में सामंजस्य नहीं होता, वह कहानी सफल नहीं होती । तत्त्वों का संघटन या एकत्रीकरण कहानी को रचना-प्रक्रिया में आवश्यक तो है, पर उससे आवश्यक है कि तत्वों का समन्वय और उनमें सामंजस्य ।

5.4 'रेवती' शीर्षक कहानी में एक खाते-पीते परिवार का चित्रण हुआ है । जिसमें शिक्षा का अभाव है और नारियाँ रूढ़ियों से ग्रस्त हैं । परिवार का एक पुरुष पात्र मुंशीजी श्यामबंधु महांति ही कुछ पढ़ा-लिखा है, जिसे काम-चलाउ पढ़ा-लिखा ही कह सकते हैं । वह साक्षर है, शिक्षित नहीं । यह काहनी परतंत्रता के घोर अंधकाल में लिखी गई है अत: इस काहनी में परतंत्रता के प्रमुख कारण को सूचनात्मक नहीं, संकेतात्मक विधि से प्रस्तुत किया गया है । परतंत्रता का मुख्य कारण अंधविश्वाास और अशिक्षा है । इस कहानी में कहानीकार बड़े कौशल के साथ अंधविश्वास और आधुनिक सोच के द्वंद्व को उभारता है । आधुनिकसोच है कि समाज में पुरुष और नारी, दोनों को शिक्षित होना चाहिए तभी समाज का सम्यक् विकास हो सकता है और व्यक्ति की प्रगति के बंद द्वार खुल सकते हैं ।

घटना-प्रधान कहानी होने के कारण इस कहानी में लगातार घटनाएँ घटती हैं । विभिन्न घटनाओं के बीच रेवती के दुर्भाग्य को अभिव्यक्ति मिली है । इस कहानी में कहानीकार ने घटनाओं का वर्णन किया है । अत: घटनाएँ क्रम में व्यवस्थित ढंग से आती हैं । मुंशी श्यामबंधु महांति का परिवार छोटा है और उस परिवार में जीवन की आवश्यक सुविधाएँ मौजूद हैं । मुंशीजी जमींदारी की जमा-पर्ची लिखतें हैं वेतन और रसीद बनाने और 'सही' होने से उन्हें चार रुपए प्रति माह मिल जाते हैं । मुंशीजी के एक सुंदर सी लड़की है -रेवती इसका नाम है । गोप के विद्यालय में वासुदेव नाम का एक शिक्षक आता है । मुंशीजी शिक्षक वासुदेव को तीज-त्योहारों पर बुलाते हैं और इस तरह वासुदेव भी मुंशीजी के परिवार का एक सदस्य बन जाता है । मुंशीजी रेवती को पढ़ाना चाहते हैं । रेवती इससे बहुत खुश है । वासुदेव उसे प्रतिदिन शाम में पढ़ाने लगता है विद्या के प्रति रेवती में आसक्ति है । रेवती की दादी को किसी नारी का पढ़ना अच्छा नहीं लगता । नारी विद्या की अधिकारिणी नहीं होती, उसे विद्या (शिक्षा) से अलग रहना चाहिए । पहली नारी है जो पढ़ रही है । बूढ़ी दादी अनिष्ट की आशंका में जीने लगती है ।

मुंशीजी वासुदेव और रेवती के विवाह बंधन में बाँधना चाहते हैं । दोनों के विवाह की बात पक्की होती है । रेवती के भीतर सपने कुलाचें भरने लगते हैं । वह बराबर गुलाबी सपनों में खोई रहती है । पर दुर्भाग्य को यह सब कहाँ मंजूर था । गाँव में हैजा फैलता है । पहले मुंशीजी स्वर्ग सिधारते हैं और बाद में सभी सुविधाओं में जीनेवाली रेवती अभावों में जीने लगती है । बूढ़ी दादी रेती की सहारा है पर वह तो उसे दिन-रात गाली देती है। व ह यही कहती है कि रेवती के पढ़ने के चलते ही उसके पुत्र और बहू की मृत्यु हुई । रेवती का दुर्भाग्य इतना ही अनर्थ नहीं करता । वासुदेव जो रेवती के जीवन का ध्रुवतारा है, उसके जीवन के अँधेरे में आशा की किरण है, हैजा की चपेट में आकर उस दुनिया से विदा ले लेता है । रेवती इस निर्मम दैव-लीला से पूरी तरह टूट जाती है । वह हतप्रभ रह जाती है । उसका जीवन सर्वथा अर्थहीन हो जाता है । वह खाना-पीना त्याग देती है । खाना-पीना क्या त्यागती है, उसे गरीबी के चलते तो दोनों जून का खाना नसीब नहीं होता ।

रेवती सन्निपात ज्वर से ग्रस्त होती है और एक शाम वह राम को प्यारी हो जाती है । कहानीकार ने रेवती का चरित्र बड़ी आत्मीयता के साथ वर्णित किया है । वह पहले अपने घर में जादू की पुतली थी सबको विमोदित करनेवाली, पर माता-पिता के मरने के बाद वह विवशता की प्रतिमूर्ति बन जाती है । वासुदेव से वह प्रगाढ़ प्रेम करती है । उसका सरल अस्तित्व ही वासुदेवमय हो जाता है । वासुदेव के नहीं रहले पर उसका जीवन निरर्थक हो जाता है और वह मृत्यु का आलिंगन कर लेती है । कहानीकार ने रेवती के त्रासद जीवन को बड़ी कुशलता के साथ बुना है । रेवती को कोसती, गाली देती बुढ़ी दादी एक दिन इस दुनिया से कूच कर जाती है । 'रेवती' शीर्षक कहानी में 'रेवती' के दुर्भाग्य को घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है ।

5.4.2 रेवती

इस कहानी में रेवती प्रधान पात्र है । उसके दुर्भाग्य को इस कहानी में अभिव्यक्ति मिली है । रेवती सुंदर और चंचल है । माँ बाप की प्यारी लाड़ली । उसकी आवाज बहुत मधुर है । सध्या-भजन के समय वह अपने पिता के पास बैठकर भजन गाती है । वह विद्यार्जन के प्रति रूचि रखती है । गाँव के प्राथमिक विद्यालय के

शिक्षक वासुदेव से वह पढ़ती है । शिक्षक के प्रति उसके भीतर श्रद्धा के साथ ममत्व भी है । माता-पिता रेवती और वासुदेव की शादी करना चाहते हैं । यह जानकर रेवती में कुछ-कुछ परिवर्तन लक्षित होने लगता है । उसके भीतर रंगीन स्वप्न मचलने लगते हैं । पर दुर्भाग्य को यह सब कहाँ मंजूर है । पढ़ाई के चलते उसे अपनी बूढ़ी दादी से बराबर उपेक्षा मिलती है । हैजा में पिता और माता के दिवंगत होने पर बूढ़ी दादी की, उपेक्षा भद्दी गाली में बदल जाती है -वह कुलनासी और 'भड़मुँही हो जाती है । माता-पिता के स्वर्गवासी होने के बाद बूढ़ी दादी और वासुदेव का सहारा था । महामारी में वासुदेव के मरने के बाद रेवती बुरी तरह टूट जाती है । उसके सपने चूर-चूर हो जाते हैं । बूढ़ी दादी के साथ उस परिवार में दरिद्रता भी रहती है । रेवती एक तरह से बेसहारा है । वासुदेव था तो उसे अपना जीवन सार्थक लगता था । उसके नहीं रहने पर उसे जिंदा रहना व्यर्थ लगता है । सनिपात रोग से ग्रस्त होकर वह एक शाम इस दुनिया से मुक्त हो जाती है । इस काहनी में रेवती के दुर्भाग्य का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है ।

5.4.3 वासुदेव

रेवती के बाद इस कहानी में वासुदेव का चरित्र प्रस्तुत किया गया है । वासुदेव अपने नाम के अनुसार स्वभाव से भी वासुदेव है । उसने कटक के नार्मल स्कूल से प्रशिक्षण प्राप्त किया है और शिक्षक के रूप में उसकी नियुक्ति पाटपुर के प्राथमिक विद्यालय में हुई है । वासुदेव की उम्र लगभग बीस-इक्कीस की है । उसका शरीर गठीला ओर चेहरा सुदंर है । वह देखने में जितना सुंदर है, उतना ही उसका हृदय भी सुंदर है । गाँव के अंदर आते-जाते समय वह किसी की तरफ आँख नहीं डालता । बचपन में ही माता-पिता के गुजर जले के कारण वह ननिहाल में मामा के संरक्षण में पला है । उसका चरित्र मानवीय गुणों से परिपूर्ण है । उसमें करूणा, उदारता, परोपकार और सेवावृत्ति कूट-कूटकर भरी हुई है । वह कर्त्तव्यनिष्ठ और ईमानदार है । रेवती से उसका परिचय होता है और वह रेवती से अपना प्रेम मौन में ही अभिव्यक्त करता है । वह शिष्ट और सभ्य है । वह निर्भीक होकर अपना कर्तव्य पालन करता है । यह जानकर भी कि रेवती के पिता को हैजा हो गया है, वह कर्तव्ययुत नहीं होता, वह मुंशीजी के मुँह में पानी देना, पैर दबाना. दवाई दिलाना आदि सेवा का काम करता है । 'वासुदेव' में विपत्ति में फँसे लोगों के प्रति करूणा का भाव है । रेवती के माता-पिता के मरने के बाद वह रेवती और बूढ़ी दादी का संहारा बनता है । वह रोज दोनों वक्त आता है और रात देर तक दादी-पोती के साथ बैठता है । दोनों सोने जाते हैं तो घर लौटता है ।

रेवती के प्रति वासुदेव का प्रेम सात्विक और मर्यादा पूर्ण है । रेवती को जी भर कर देखने की इच्छा रहते हुए भी वह उसे देख नहीं पाता है । पर जब वह पाँच दिनों के लिए पाटपुर से हरिपुर थाने में बच्चों की परीक्षा के लिए चलने की तैयारी करता है तब उसकी आँखें रेवती की आँखों से मिलती हैं और वह रेवती की सुंदरता का पान करता रहता है । पर रेवती को पाने के पहले ही वह इस दुनिया से चल बसता है । महामारी पहले रेवती के पिता को मारती है उसके बाद उसकी माँ को और वासुदेव को तो मारकर वह अपनी निर्ममता का भयानक उदाहरण ही पेश कर डालती है ।

कहानीकारने वासुदेव के चरित्र को बड़ी आत्मीयता के साथ रचा है । मनोवैज्ञानिक कहानी नहीं होने के कारण इसमें वासुदेव या रेवती के अन्तर्द्वन्द्व का भले ही चित्रण न हुआ हो, पर कुछ ऐसे स्थल इस कहानी में

अवश्य आते हैं जहाँ इस पात्रों के अंर्द्वन्द्व का बड़ा खूबसूरत वर्णन हुआ है । वासुदेव का चरित्र आदर्श और अनुकरणीय है ।

5.4.4 मुंशीजी श्यामबंधु महांति

रेवती के पिता का चरित्र विश्वसनीय है । पुत्री के प्रति पिता के ममत्व को गृहस्थजीवन के पारंपरिक माधुर्य के साथ प्रस्तुत किया गया है । रेवती के पिता मुंशीश्यामबंधु महांति बड़े सीधे-सादे आदमी हैं प्रजा लोग उन्हें खूब इज्जत और श्रद्धा करते हैं । भाई-भतीजों का-सा रिश्ता रैयतों से जोड़ते हैं और द्वार-द्वार घूमकर लगान वसूल कर लेते हैं । प्रजा लोग लगान चुकाकर रसीद नहीं माँगते । चार अंगुल के ताड़-पत्र पर रसीद लिखकर खुद रैयतों के घर छोड़ आते हैं । जमींदार के प्यादे आते तो उन्हें गाँव के अंदर जाने के मौका नहीं देते । वे खुद हुक्का-पानी लिए दो पैसे उनके हाथ में थमा देते हैं और वापस विदा कर देते हैं । (पृ०7) यानी मुंशीजी सीधे-सादे नेकदिल और व्यावहारिक आदमी हैं । उनकी व्यावहारिकता उस समय भी देखने को मिलती है जिस समय वे शिक्षक वासुदेव को अपनी जाति (कायस्थ) का जानकर उसे तीज-त्योहारों पर आमत्रित करते हैं । वे आगे चलकर रेवती और वासुदेव का परिणय-सूत्र में बाँधने का निश्चय करते हैं ।

रेवती के पिता जातिपाँति को महत्व देते हैं । उसकी सोच में शादी-ब्याह जाति की सीमा में ही होना ठीक होता है । मुंशीजी नर-नारी दोनों के लिए शिक्षा अनिवार्य मानते हैं । उनकी दृष्टि में नारियों को सुशिक्षित होना समाज के विकास के लिए अनिवार्य है । तभी तो वे अपनी माँ की आपत्ति के बावजूद वे उसे पढ़ाने का संकल्प लेते हैं । कहानीकार ने मुंशीजी का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है ।

5.4.5 बूढ़ी माँ

मुंशीजी की माँ का चरित्र अत्यंत स्वाभाविक है । वह जड़ परंपराओं में जीती है अत: उसकी सोच में एक प्रकार का ठहराव है । वह नए युग के अनुसार नई बात पर विश्वास नहीं करती उसके लिए अतीत ही महत्वपूर्ण है । स्त्री का कर्तव्य है कि वह घर गृहस्थी सँभाले, उसे पढ़ाई लिखाई से दूर रहना चाहिए क्योंकि पढ़ाई, लिखाई पुरुषों के लिए जरूरी है, स्त्रियों के लिए नहीं-इस जड़ मानसिकता में बूढ़ी जीवित है । बूढ़ी की इस जड़ सोच के कारण ही कथानक में एक द्वंद्व का निर्माण होता जिसके चलते कहानी में 'व्यंग्य' की प्रतिष्ठा होती है । कहानी की त्रासदी में बूढ़ी की जड़ सोच का ही साथ है । उसी के चलते रेवती मरती है और वहस्वयं मरती है । यानी कहानीकार यह संकेत देता है कि अतीत की जड़ सोच में जीने से समाज का किसी भी रूप में कल्याण संभव नहीं है । नारी यदि पुरुषों द्वारा बनाए गए छलपूर्ण बंधन में बँधने को ही अपने जीवन की सार्थकता समझती है तो उसका पतन काई नहीं रोक सकता । ऐसी स्थिति में समाज तो डूबेगा ही नारी भी अस्तित्वहीन होगी । कहानीकार ने इसी सामाजिक दर्शन पर बूढ़ी (मुंशीजी की माँ) का चरित्र प्रस्तुत किया है ।

कहानी के सारे पात्र स्वाभाविक और यथार्थ हैं । कहानीकार ने परिवेश के अनुकूल पात्रों का चरित्र प्रस्तुत किया है । पात्र प्रस्तुति में कहानीकार को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है । वातावरण की सृष्टि सार्थक एवं सोद्देश्य हुई है ।

5.4.6 कहानी घटना-प्रधान है, अत: इसमें संवादों के माध्यम से कथानक के विकास पर कम ध्यान दिया

गया है । संवाद कथानक का विकास करते हैं और पात्रों की विशेषताओं को प्रस्तुत करते हैं । इस कहानी में 'संवाद' नाटकीय त्वरा नहीं भरते फिर भी (इसमें प्रयुक्त संवाद) ये पात्रों की स्वाभाविक मानसिकता को अवश्य खोलते चलते हैं । इस सामान्य भारतीय परिवार का परिवेश अपनी सारी विशेषताओं के साथ यहाँ चित्रित हुआ है । पारिवारिक माधुर्य एवं मतवैभिन्य का वर्णन इस काहनी में यथार्थ स्तर पर चित्रित है । महामारी के समय की भयावहता का वर्णन गाँव परिवार की विवशता को मार्मिक स्तर पर प्रस्तुत करता है । कहानीकार को रेवती एवं बूढ़ी की मौत को चित्रित करने में अपूर्व सफलता मिली है । वातावरण की सृष्टि सार्थक एवं सेद्देश्य हुई है । कहानी में संवाद कम हैं पर ये अपनी स्वाभाविकता में कथा को एक निश्चित गति अवश्य प्रदान करते हैं । बूढ़ी माँ और बेटे (मुंशीजी) का संवाद बड़ा सार्थक है ।

5.4.4 इस कहानी में कहानीकार ने यही विश्वास दिखाया है कि सोच की जड़ता और अंधविश्वासों का कुटिल बंधन समाज के विश्वास को प्रतिरूद्ध करता है । अशिक्षित रहकर नारियाँ जहाँ समाज में त्रासदी की रचना करती हैं, वहीं वे अपने अस्तित्व को मिटा डालती हैं । इस कहानी का उद्देश्य स्पष्ट शब्दों में नहीं व्यक्त होकर व्यंग्यात्मक और संकेतात्मक रूप में अभिव्यक्त हुआ है । इस अर्थ में यह कहानी शिल्प के स्तर पर अपने समय से बहुत आगे है ।

5.4.6 यह कहानी वर्णानात्मक शिल्प में रचित वै जिसके अंत में त्रासदी ओर विडंबना को संकेत और व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है । भाषा अपनी सहजता में भी चित्रात्मकता से परिपूर्ण है । भाषा सरल एवं स्वाभाविक है । इसमें काव्यात्मकता के लिए कोई अतिरिक्त प्रयासों नहीं किया गया है, कहानी में संवादों की भाषा यर्थापरक और चित्राकर्षक है ।

"एक दिन रात का भोजन लेते वक्त माँ-बेटे में बातचीत चली । शायद पहले कोई बात उठी थी, यह उसका उपसंहार था ।

श्यामबंधु-क्या सोचती है, अच्छा नहीं होगा ?

बूढ़ी-हाँ, अच्छा तो होगा, उसकी जाति-पाँत की बात पूछी न

श्यामबंधु-हाँ, आजतक और क्या पूछा ? खानदानी कायस्थ है । गरीब हुआ तो क्या हुआ, जाति तो ऊँची है ।

बूढ़ी-धन-दौलत का नहीं विचार जाति-पाँत है सबसे सार घर रहेगा तो !

श्यामबंधु-घर रुकेगा तो और कहाँ जाएगा । जो भी कहो वे लोग मामा-मामी हैं ।' (पृ०9-10)

बूढ़ी और दुकानदार के बीच हुए संवाद की भाषा भी यथार्थपरक है ।

कहानी के अंत में कहानीकार ने बिंबात्मक एवं काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है । कहानी के अंत की भाषा नाटकीय आवेग से परिपूर्ण है । एक-एक शब्द व्यंजना से पूर्ण है । भाषा की ऐसी काव्यमय रचना में एक अभूतपूर्व व्यंग्यत्मक झनझनाहट है । वर्णन-प्रधान कहानी अपनी जीवंत भाषा के चलते नाटकीय पटाक्षेप के साथ समाप्त होती है । भाषा और शिल्प के स्तर पर इस कहानी का अन्तिम भाग कहानी के पूर्व भाग से सर्वथा अलग दिखाई पड़ता है । घटना-प्रधान इस कहानी में मध्य तक वर्णन की प्रधानता है पर अंत में आकर

यह कहानी संकेतात्मक हो जाती है । फिर भी कला एवं नाटकीय मुद्रा में भी वहाँ वर्णनात्मकता वर्तमान हैं । 'रेवती' शीर्षक कहानी अपनी सादगी में भी समाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करने में सफल है ।

5.5 प्रमुख चरित्र. चित्रण

'रेवती' रेवती के पिता (मुंशीजी श्यामबंधु महंति) मुंशीजी की बूढ़ी माँ आदि के चरित्र-चित्रण के लिए देखें **पीछे के पृष्ठों को ।**

5.6 व्याख्या

5.6. ''हाय रे, तूने प्रवास में अपनी बेवकूफी से जान गँवाई (पृ0 15)

प्रस्तुत कथन मुंशीजी की बूढ़ी माँ का है । यह कथन 'रेवती' शीर्षक कहानी में आया है । 'रेवती' शीर्षक कहानी के रचनाकार उड़िया के लब्धप्रतिष्ठ कथाकार फकीर मोहन सेनापति हैं ।

डिप्टी साहब हरिपुर थाने में वासुदेव की पाठशाला के बच्चों की परीक्षा लेनेवाले हैं । वह अपनी पाठशाला के बच्चों को हरिपुर ले जाता है । हरिपुर में पाँच दिनों तक रहने के बाद लौटते समय गोपालपुर के बरगद के पास ही उसे हैजा हो जाता है । आधी रत को उसकी मृत्यु हो जाती है । यह दर्दनाक खबर रेवती और बूढ़ी के पास पहुँचती है । दोनों को उससे अपार पीड़ा होती है ।

बूढ़ी को अफसोस होता है कि वासुदेवने अपनी जान जानबूझकर गँवाई है । उसे पूरा विश्वास है कि रेवती को पढ़ाने के कारण ही यानी एक औरत को पढ़ाने के कारण ही उसकी मुत्यु हुई है । उसने रेवती को पढ़ाकर मूर्खता की है । यदि उसने नारी जाति को (रेवती को) विद्या नहीं पढ़ाई होती तो उसकी असमय मृत्यु नहीं हुई होती ।

बूढ़ी के जड़ विचार और अंधविश्वास को कहानीकार ने अभिव्यक्त किया है । बूढ़ी जड़ संस्कारों में जीती है । वह पुरुषों को ही विद्या का अधिकारी मानती है । उसके अनुसार स्त्रियों को विद्या नहीं पढ़नी चाहिए । उन्हें तो सिर्फ चूल्हा-चौके और गृहस्थी से ही नाता रहना चाहिए । कहानीकार ने मुंशीजी की माँ की संकीर्ण मानसिकता एवं जड़ संस्कार को व्याख्येय पंक्ति में प्रस्तुत किया है । बूढ़ी आधुनिकता बोध से हीन है और पुरातन संस्कारों में बुरी तरह जकड़ी हुई है ।

5.7 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'रेवती' शीर्षक कहानी की कथावस्तु लिखें ।
2. 'रेवती' शीर्षक कहानी के पात्रों का संक्षिप्त परिचय दें ?
3. 'रेवती' का चरित्र चित्रण करें ।
4. वासुदेव का चरित्र चित्रण लिखें ।
5. रेवती का चरित्र-चित्रण लिखें ।

6. रेवती के पिता की प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में लिखें ।

7. रेवती और वासुदेव के प्रेम-प्रसंग पर संक्षेप में प्रकाश डालें ।

8. मुंशीजी की उदारता पर अपने विचार दें ।

5.8 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही उत्तर का संकेताक्षर (क,ख, ग, या घ) लिखें ।

1. वासुदेव कौन है ?

(क) रेवती का भाई (ख) मुंशीजी का पुत्र

(ग) बूढ़ी दादी का पोता (घ) स्कूल का शिक्षक उत्तर- (ख)

2. पाटपुर किस हलके में आता है ?

(क) हरिहर पुर (ख) हरहरपुर

(ग) हरनाथपुर (घ) हरिनागपुर उत्तर-(क)

3. बूढ़ी किसे भाँड़ मुँही कहती है ?

(क) मुंशीजी की पत्नी को (ख) मुंशीजी की पुत्री को

(ग) अपनी पड़ोसिन को (घ) अपनी बहू को उत्तर-(ख)

4. रेवती के पिता का क्या नाम था ?

(क) दीनबंधु मोहंती (ख) श्यामबाबू महांति

(ग) श्यामबंधु मोहांति (घ) इनमें से कोई नहीं उत्तर (ग)

माँ (कन्नड़ कहानी : डॉ० यू० आर० अनंतमूर्ति)

6.1 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य हिंदी में अनूदित कन्नड़ कहानी 'माँ' की समीक्षा प्रस्तुत करना है ताकि इस कहानी से छात्र पूर्णत: परिचित हो सकें ।

6.2 परिचय

'माँ शीर्षक कन्नड़ कहानी डॉ० यू० आर० अनंतमूर्ति द्वारा लिखी गई है । डॉ० यू० आर० आंतमूर्ति कन्नड़ भाषा के प्रसिद्ध लेखक हैं । उन्होंने साहित्य की विभिन्न विद्याओं में अपनी लेखनी-चलाई है । शिल्प के प्रति इनमें विशेष रुचि देखी जाती है । इनका कथाशिल्प सर्वथा नवीन और आकर्षक है ।

6.3 कहानी-कला की दृष्टि से 'माँ' शीर्षक कहानी का मूल्यांकन ।

6.3.1 'माँ' कहानी का कथानक

'माँ' शीर्षक कहानी मनोवैज्ञानिक कहानी है अत: इसमें घटनाओं का विस्तार नहीं है, मन के विस्तार की थाह लेने की कोशिश है । माँ (अब्बक्का) अपनी भूल पर पश्चात्ताय करती है । उसने कौन-सी भूल की ओर वह भूल किन कारणों से की इसी का मनोवैज्ञानिक विवेचन इस कहानी में हुआ है । और इस विवेचन के आधार पर अब्बक्का (माँ) के चरित्र का निर्माण हुआ है ।

अब्बक्का अपने आठ साल के पुत्र को कहानी सुना रही है । वह कहानी सुनाते समय लगातार रो रही है । अबबक्का का पुत्र कहानी सुनने में कोई रुचि नहीं लेता, उसकी रूचि तो इसमें है कि वह माँ के रोने का कारण जाने । वह माँ से कहता है "नहीं मुझे कहानी नहीं चाहिए सुबह से लगातार क्यों रो रही हो, बतलाओ ! पुत्र के हठ करने पर माँ अपने रोने का कारण बताती है ।

माँ के एक पुत्र था, यानी माँ से रोने का कारण पूछनेवाले पुत्र के एक बड़ा भाई था । उसका नाम था चेलुवा । जैसा नाम वैसा ही वह सुंदर था । देखनेवालों की भीड लगती थी । वह काला और लंबा था । लंबा मुख, नीम की सलाई कील तरह पतली भौंहें, गोदा हुआ, ऊँचा माथा तथा किनारे पर झुकी हुई नाक । उसकी दो छोटी-छोटी गाल-गोल आँखें शिवजी के त्रिशुल की धार की तरह हमेशा चमकती रहती थीं । थोड़े गर्व से भरी मुद्रा के मोटे होंठ, रुखे घुँघराले बालों वाला उसका बड़ा सिर और उसकी धीमीचाल से भला कोन आकृष्ट नहीं होता था ।

माँ के छोटे पुत्र शीनू ने पूछा कि मेरा भैया कहाँ है । माँ ने जवाब दिया कि वह तुम्हारी माँ से चिढ़कर कहीं दूर चला गया है ।

शीनू ने माँ से पूछा कि पिता ने भैया को जाने से क्यों नही रोका । इस पर माँ ने जवाब दिया कि तुम्हारे पिता और उसके पिता मित्र हैं ।

अब्बक्का चेलुवा के पिता के मरने के बाद चेलुवा को तेरह वर्षों तक मेहनत मजदूरी कर यत्नपूर्वक खोलती है पर जब वह जब दूसरी शादी कर लेती है तो चलुवा को यह अच्छा नहीं लगता । अब्बक्का और चेलुवा में मनमुटाव हो जाता है । चेलुवा नहीं चाहता है कि उसकी माँ दूसरी शादी करे, पर उसकी माँ अपने लाड़ले बेटे की बात पर ध्यान नहीं देती और इसलिए शादी कर लेती है । उसकी जात में एक स्त्री कई-कई शादियाँ करने को स्वतंत्र है । अब्बक्का सोचती है कि उसके दूसरी शादी करके कोई अपराध नहीं किया है ।

चेलुआ को अच्छा नहीं लगता कि उसकी माँ उसके होते हुए दूसरी शादी करे । वह अपनी माँ का विरोध करता है ओर कुछ लोगों के बहकावे में आकर उसे मारने का उद्यत हो जाता है । अब्बक्का को यह अच्छा नहीं लगता । जिस माँ ने इसे पाल-पोसकर बड़ा किया, उसी को वह मारने चले । माँ और बेटे में कहा-सुनी हो जाती है और चेलुवा घर छोड़कर भाग जाता है । माँ को उस बात का दु:ख है कि चेलुवा अपनी माँ के वात्सल्य की थाह लगाने में असमर्थ है । माँ को इस बात का घोर दु:ख है कि उसका बच्चा उसे छोड़कर बहुत दूर चला गया है । आठ-नौ वर्ष हो गए, उसने घर की ओर मुड़कर भी नहीं देखा है । आँखों में तेल भरकर प्रतीक्षा करलेवाली माँ को एक पत्र भी नहीं लिखा है । क्या एक बार माँ का चेहरा देखने की इच्छा नहीं होती उसकी ।

अब्बक्का अपनी भूल पर विचार करती है । चेलुवा के प्रति वात्सल्य भाव और रसिक के प्रति अपूर्व आकर्षण के द्वंद्व में फँसी अब्बक्का रसिक आदमी को ही ज्यादा महत्त्व देती है । वह भूल जाती है कि उसका बेटा अब बड़ा हो गया है । उस सुंदर, आकर्षक आदमी के मोह में इस तरह फँस गई थी कि वह उस मोह-वश को तोड़ नहीं सकती थी । वह अपने बेटे को अपने काम-सुख में खलाल डालनेवाला समझती है और उससे झगड़ जाती है । उसके पापी मोह के चलते उसका बेटा हाथ से निकल जाता है ।

अब्बक्का का वात्सल्य चेलुवा के बाइसवें जन्मदिन पर उमड़ पड़ता है, वह चेलुवा को याद कर तड़प उठती है । न जाने कहाँ जाकर किस बाघ का शिकार बन गया ? किन लुटेरों के हाथ फँसा ? असहनीय दु:ख के कारण किस नदी में कूद पड़ा ? पता नहीं, अकेले होकर कहाँ भूख से तड़पा । माँ के जीते जी उस अनाथ का क्या हुआ ? कुछ भी पता नहीं ।

अब्बक्का सोचती है कि मैं पापी मोहसे नहीं फँसी होती तो मेरा चुलुवा मेरे साथ होता । उसकी शादी करती, पोते से खेलने का सुख भोगती । अब्बक्का अपने को धिक्कारती है कि उसने सुंदर युवक के प्रेम में पागल होकर अपनी ममता को कलंकित किया । वह अपने को राक्षसी, पिशाचिनी और पापिनी का दर्जा देती है ।

अब्बक्का के दूसरे बेटे शीनू को सोते समय माँ से कहानी सुननी है । माँ कहानी सुना रही है, पर अपने सोने का कारण बताने के चलते वह चेलुवा की कहानी सुनाने लगती है । शीनू चलुवा को दोषी सिद्ध करता है और माँ से वह कहानी सुनना चाहता है जिसमें एक दिन माँ अपने बच्चे को पूरी रोटी के लिए हठ करने पर आँगन में धकेल कर सिटकिनी लगा लेती है और पुन: रोटी पकाने लगती है । एक बाघ आता है । उसे

[illegible]कर बच्चा थर-थर काँपने लगता है । वह माँ से कहता है-आधी रोटी ही काफी है दरवाजा खोलो । पर [illegible]म माँ दरवाजा नहीं खोलती । बाघ बच्चे को खा जाता है ।

कहानी सुनाते सुनाते माँ को नींद आ जाती है । वह एक स्वप्न देखती है । उसका प्यारा बेटा चेलुवा उसे आवाज लगा रहा है । वह दौड़ी उसके पास जाती है । उससे क्षमा-यचना करती है । चेलुवा चलने को तैयार होता है तो वह जोर जोर से चिल्लाने लगती है । मेरे लिए रूको बेटा, मेरी सौगंध रुको...रुको...चेलुवा.....।'' आठ साल का शीनू माँ को जगाता है । माँ की नींद टूटती है । अब्बक्का उसे दूध पिलाने लगती है ।

प्रस्तुत कहानी वात्सल्य और वासना के द्वंद्व में पड़ी एक स्त्री का चरित्र प्रस्तुत करती है जिसके अंत में मातृत्व की विजय होती है और वासना की पराजय होती है ।

6.3.2 कहानी के पात्र

'माँ' शीर्षक कहानी में तीन पात्र हैं, अब्बक्का (माँ) और) उसके दो पुत्र-चलुवा एवं शीनू । इस काहनी में माँ अब्बक्का की विशेष मानसिक स्थिति का चित्रण हुआ है । अत: वही इस कहानी की प्रधान पात्र है । शेप दोनों पात्र कहानी के अस्तित्व को सहारा देते हैं । माँ का छोटा पुत्र शीनू अपनी जिज्ञासा से कहानी के विकास में सहायक होता है, उसकी भूमिका बस इतनी ही भर है । यद्यपि चेलुवा इस कहानी में सक्रिय पात्र के रूप चित्रित नहीं है, फिर भी वह उस कहानी का एक महत्वपूर्ण पात्र है ।

6.3.2.1 माँ अब्बक्का का चरित्र-चित्रण

अब्बक्का 'माँ' शीर्षक कहानी की प्रधान पात्रा है । इस कहानी में उसके मानस द्वंद्व का सफल चित्रण हुआ है । इस कहानी में उसके चरित्र की दो विशेषताएँ उभरती है । भोगरस में लिप्त रहनेवाली अब्बक्का और मातृत्व के सत्वस् पीयूषधार में गोतें लगानेवाली अब्बक्का ।

चेलुवा के पिता की मृत्यु के पश्चात् अब्बक्का चेलुवा को तरह वर्षो तक यत्नपूर्वक पालती-पोसती है । वह चेलूवा के सम्यक् भरण-पोषण के लिए कठिन परिश्रम करती है । अब्बक्का के तेरह वर्षो के तप के बीच न जाने कहाँ से भोग की लालसा लहलहा उठती है । वह कुलियों की मैनेजरी करने वाले को अपना ह्दय दे बैठती है । चेलुवा को माँ का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता । वह माँ का विरोध करता है । माँ-बेटा में झगड़ा होता है और बेटा चेलुवा घर छोड़कर परदेश चला जाता है । अब्बक्का उस संध पुरुष के प्यार में इतनी ही दीवानी है कि उस समय उसे चेलुवा का घर छोड़ना उतना नही अखरता । पर जब अब्बक्का की गोद में शीनू और शीनू के छोटे भाई को छोड़कर वह सुंदर पुरुष दूर देश चल जाता है और उसकी कोई खोज-खबर नहीं मिलता तब अब्बक्का की आँखें खुलती हैं । तब उसे लगता है कि तेरह-चौदह वर्ष के चेलुवा के होते उसकी [illegible] नहीं थी । उसका मातृत्व जग जाता है । वह वात्सल्यमयी माँ अपने पुत्र चेलुवा के लिए बेचैन हो जाती है । शीनू जब अपनी माँ (अब्बक्का) से सोते समय कहानी सुनाने को कहता है तब वह अपने जीवन की कहानी ही प्रतीकात्मक कथा के रूप में प्रस्तुत करती है । उसे अपनी निर्ममता और क्रूरता का अहसास होता है । कैसे [illegible] माँ होकर भी उसने अपने पुत्र चेलुवा को घर छोड़ने [illegible] और काम के लिए [illegible] मातृत्व और वात्सल्य की बलि दी ।

अब्बक्का के चरित्र में भोग और वात्सल्य का द्वंद्व देखा जा सकता है । वह भोग की ओर खिंचती है पर भोग से मिली अवहेलना के चलते वह पुन: मातृत्व की सात्त्विकता और महत्त्व से परिचित होती है और चुलुवा के लिए तड़प उठती है । भोग उसे राक्षसी, पिशाचिनी, वेश्या और पापिनी बना देता है । पर मातृत्व का बोध होते ही वह पुन: वात्सल्य के आनंद की ओर उन्मुख होती जाती है । ''अब्बक्का उमड़ते आँसुओं को साड़ी के आँचल से पोछने की कोशिश कर बच्चे को छाती का दूध देती है उस नीरव, गंभीर अंधकार में (पृ०20।) अब्बक्का मातृत्व के कारण संपूर्ण नारी बनती सी दिखती है । भोग की तरफ उन्मुख अब्बक्का नारी है तो मातृत्वपूण अब्बक्का संपूर्ण नारी । सचमुच भोग दु:ख और संताप का जनक है, वह पानी मोह है जो जीवन के निरर्थक बना देता है । भोग से संयमपूर्ण विरति ही जीवन में आनंद की मिठास भर सकती है । अब्बक्का भोग से विरत होकर तथा पश्चात्ताप में अपने को तपाकर स्नेह की निर्झरिणी बन जाती है । उसका जीवन मातृत्व से निहाल हो उठता है । उसके तीन बेटे हैं-चेलुवा, शीनू और पालने में उसके दूध की प्रतीक्षा में रोता हुआ बालक । अब्बक्का प्रेम में धोखा खाकर भी अतिशय भाग्यवाली है । कहानीकार ने अब्बक्का का चरित्र अपूर्व कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है ।

6.3.3 कहानी के अन्य तत्त्वों की समीक्षा

कथोपकथन सहज एवं स्वाभाविक हैं । शीनू और अब्बक्का के **संवाद** सहज हैं और कथा को विकास देनेवाले हैं । शीनू के संवाद में जिज्ञासा है और अब्बक्का के संवाद में निश्छलता ।

शीनू :''माँ, बोलो न, भैया कहाँ है ?''

अब्बक्का:''तुम्हारी माँ से चिढ़कर कहीं दूर चला गया ।''

शीनू:''माँ, उसको जाने से तुमने रोका क्यों नहीं ?

पिता ने मना क्यों नहीं किया माँ ?

अब्बक्का :''तुम्हारे पिता और उसके पिता भिन्न हैं, बेटा । उसके पिता के मर जाने के बाद..

6.3.3.2 'माँ शीर्षक कहानी में जीवंत **वातावरण** की सृष्टि की गई है । माँ ने अपने हठी बच्चे को आँगन में धकेलकर सिटकिनी लगा दी । बच्चा रोता रहा, माँ नहीं पसीजी । रात के अँधेरे में बाघ आया । बच्चा डर गया । उसने दरवाजा जोर-शोर से खटखटा कर अपनी तुतली बोली मे विनती की आधी रोटी ही काफी है माँ, दरवाजा खोलो ।' माँ ने दरवाजा नहीं खोला । बच्चा बाघ के मुँह का कौर बन गया । यह दृश्य अत्यंत भयावना है ।

इस कहानी में स्वप्न के माध्यम से जिस वातावरण का निर्माण हुआ है, वह माँ की ममता को पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ है । इस कहानी का अंत जिस वातावरण में होता है, वह दृश्यात्मकता और अर्थवत्ता, दोनों को पूर्णता के साथ चित्रित करता है ।

6.3.3.3 इस कहानी की **भाषा** कथा, नाट्य एवं गीति विधा के दबाव में सृष्ट है, अत: यह अत्यंत समर्थ एवं प्रभावोत्पादक है । मानसिक द्वंद्व को प्रस्तुत करने में इस कहानी की भाषा पूर्णत: समर्थ है । वातावरण को

जीवंत बनाने के लिए कहानीकार ने बिंबात्मक भाषा का प्रयोग किया है ।

प्रस्तुत कहानी में एक प्रतीक कथा का सृजन हुआ है जो प्रधान कथा के बिंदु के रूप में अत्यंत प्रभावोत्पापक है । प्रतीक कथा के कारण 'माँ' शीर्षक कहानी का कथ्य अत्यंत संप्रेषणीय है । पूरी रोटी के लिए जिद करनेवाला कलेजे के टुकड़े को एक निर्मम माँ आँगन में धकेल कर सिटकिली लगा देती है । रात के अँधेरे में जंगल से बाघ आता है और उस बालक को खा जाता है । यह क्या इस कहानी की प्रधान कथा की छाया बनकर आती है और 'माँ'' अब्बक्का की निर्ममता को पूर्णता में प्रस्तुत करती है । प्रधान कथा के साथ प्रतीक कथा का विनियोग इस कहानी को सफल बनाता है । प्रतीक कथा का विनियोग इस कहानी को नवीन शिल्प प्रदान करता है ।

जीवन में भोग का सुख क्षणिक होता है, पर वात्सल्य से प्राप्त आनंदानुभूति स्थायी होती है, इसी आधारभूमि पर 'माँ' शीर्षक कहानी की रचना हुई है । प्रस्तुत कहानी में कहानी-कला के सभी तत्त्वों की सुंदर समायोजना हुई है । तात्त्विक समायोजना के आधार पर इस कहानी को एक सफल और सार्थक कहानी कहा जा सकता है ।

6.4 चरित्र चित्रण

6.4.1 अब्बक्का (माँ) का चरित्र-चित्रण पीछे के पृष्ठ पर देखें,

6.5 व्याख्या के अंश

1. **''माँ की कोख पर आग न लगाना'' सुना ! तुम्हें छोड़कर मैं यह जीवन जी न सकूँगी''(पृ० 20)।**

प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'भारत की श्रेष्ठ कहानियाँ' में संकलित 'माँ' शीर्षक कहानी से लिया गया है । 'माँ शीर्षक कहानी के कहानीकार डॉ० यू० आर० अनंतमूर्ति है । 'माँ' शीर्षक कहानी कन्नड़ भाषा में लिखी गई है जिसका हिंदी अनुवाद पाठ्यपुस्तक (भारत के श्रेष्ठ कहानियाँ) में संकलित है ।

अब्बक्का के पथभ्रष्ट होने से नाराज होकर उसका बेटा चेलुवा घर छोड़कर भाग जाता है । अब्बक्का दूसरी शादी करती है । उसे दूसरे पति से दो पुत्र होते हैं । अब्बक्का को छोड़कर दूसरा पति परदेश चला जाता है और उसकी कोई सुध नहीं लेता । अब्बक्का को तब महसूस होता है कि उसने क्षणिक कामसुख के लिए बहुत बड़ी गलती कर दी है । उसका तेरह-चौदह वर्ष का पुत्र चेलुवा उससे रुठकर दूर देश चला गया है । गलती का अहसास होने पर अब्बक्का पश्चात्ताप करने जाती है । रात-दिन वह चेलुववा की रट लगाए रहती है । वह एक रात स्वप्न देखती है कि चेलुवा परदेश से घर आया है ।

अब्बक्का चेलुवाव से स्वप्न में ही कहती है बेटा, अब मुझे छोड़कर कहीं मत जाना । माँ की कोख को कलंकित मत करना । मैं अब तुम्हारे बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकती ।

प्रस्तुत गद्यांश में मातृत्व की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है ।

2. **''इस नीरव, गंभीर अंधकार में दुःख संतप्त छाती से दूध बहता है, मीठा अनंत होकर ।'' (पृ० 30)**

प्रस्तुत मार्मिक वाक्य हमारी पाठ्यपुस्तक भारत की श्रेष्ठ कहानियाँ में संकलित कन्नड़ कहानी माँ से उद्घृत है । प्रस्तुत कन्नड़ कहानी के कहानीकार हैं डॉ० यू० आर० अनंतमूर्ति ।

अब्बक्का स्वप्न में देखती है कि उसका रुठा हुआ बड़ा बेटा घर लौट आया है । पर थोडी देर के बाद वह पुनः घर से जाने लगता है अब्बक्का इससे परम दुःखी हो जाती है । वह अपने पुत्र से कहती है कि तुम फिर क्यों जा रहे हो, क्या तुम्हें मेरी जरूरत नहीं है ।'' तुम अपनी आँखों में मेरे लिए इतना तिरस्कार क्यों रखते हो ? मेरी गोद और बगल में पालने में साये हुए बच्चे तुम्हारे भाई है । मैं उसके होते हुए भी तुमसे बहुत-बहुत प्यार करती हूँ । मैं तुम्हें कभी नहीं त्याग सकती । मेरी सौंगध बेटे, रुक जाओ रुक जाओ चेलुवा । अब्बक्का स्पप्न में ही फफककर रोने लगती है । आठ साल का शीनू अपनी माँ को झकझोरकर नींद से जगाने लगता है । झूले में सोया हुआ बच्चा भूख लगने पर दूध के लिए रोने लगता है । अब्बक्का नींद से जगती है । रात के गंभीर अंधकार की तरह ही, उसके जीवन में चेलुआ के नहीं रहने से अंधकार छाया हुआ है । इस अंध कारपूर्ण निश्शब्द रात में अब्बक्का आँचल से अपने आँसू पोछती है और भूख से रोते, हुए बच्चे को उठाकर अपनी छाती से लगा लेती है । उसकी छाती से दूध की मीठा धारा फूट पड़ती है ।

प्रस्तुत व्याख्येय पंक्ति में 'दूध' के माध्यम से मातृत्व और वात्सल्य की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है । बच्चे को रोने से द्रवित होकर माँ अपनी सारी पीड़ा भूलकर उसे अपनी छाती से लगा लेती है और अपनी ममता से उसे निहाल कर देती है ।

अभ्यास प्रश्न

6.6. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **'माँ' शीर्षक कहानी की कथावस्तु लिखें ।**
2. **अब्बक्का का चरित्र चित्रण करें ।**
3. **कथाशिल्प में भाषा की उपयोगिता पर 'माँ' की भाषा के आधार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें ।**
4. **'माँ' शीर्षक कहानी के प्रतिपाद्य या उद्देश्य पर प्रकाश डालें ।**
5. **'माँ' शीर्षक कहानी के 'वातावरण' पर विचार करें ।**

6.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही उत्तर का संकेताक्षर (क, ख, ग, या घ) लिखें ।

1. **'माँ' शीर्षक कहानी की नायिका है**

(क) राजेश्वरी (ख) निर्मला

(ग) अब्बक्का (घ) नलिनी बाई

2. अब्बक्का के दूसरे पुत्र का नाम है

(क) चेलुआ (ख) मीनू

(ग) दीनू (घ) शीनू

3. अब्बक्का के प्रथम पुत्र का नाम है

(क) चेलुआ (ख) महीप

(ग) शीनू (घ) रमापति

4. 'माँ' शीर्षक कहानी के रचनाकर है:

(क) मधुरान्तकम राजाराम (ख) फकीरमोहन सेनापति

(ग) रघुवीर चौधरी (घ) डॉ० यू० आर० आनंदमूर्ति

उत्तर-1. (ग) 2. (घ) 3. (क) 4. (घ)

संस्कार (तेलुगु कहानी)

(मधुरान्तकम राजाराम)

7.1 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य हिंदी में अनूदित तेलुगु कहानी 'संस्कार' की समीक्षा प्रस्तुत करना है ताकि छात्र इस कहानी से पूर्णत: परिचित हो सकें ।

7.2 परिचय

'संस्कार' शीर्षक कहानी तेलुगु कहानीकार राजाराम मधुरान्तकम राजाराम द्वारा लिखी गई है । मधुरान्तकम राजाराम ग्रामीण जीवन के चित्रण में निपुण हैं । ग्रामीण जीवन का जैसा वास्तविक और यथार्थ चित्रण श्री राजाराम जी ने प्रस्तुत किया है वैसा तेलगु कथा-साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता । राजाराम जी ने लगभग सौ कहानियाँ लिखी हैं । इनकी महत्त्वपूर्ण कहानियाँ अनेक भाषाओं में अनूदित हुई हैं । आंध्रप्रदेश सहित्य अकादमी, हैदराबाद द्वारा ये पुरस्कृत हो चुके हैं ।

7.3 कहानी-कला की दृष्टि से 'संस्कार' शीर्षक कहानी का मूल्यांकन

7.3.1 'संस्कार' शीर्षक कहानी का कथानक

रमापति का स्थानांतरण कस्बे के माध्यमिक विद्यालय में हुआ है । रमापति की धारणा है कि कस्बा अच्छा है, पर उसकी पत्नी, राजेश्वरी कस्बे में कोई विशेष गुण नहीं देखती । रमापति और राजेश्वरी कस्बे के संबंध में अलग-अलग विचार रखते हैं । रमापति को प्रतीत होता है कि कस्बे के विद्यालय के प्रधानाध्यापक बहुत ही सज्जन हैं, साथी अध्यापक मित्रों के लिए जान तक कुर्बान करनेवाले हैं तथा विद्यालय के विद्यार्थी विनय के अवतार है । रमापति को लगता है कि उस कस्बे के होटलों के बेटर, दुकानदार, तांगेवाले सभी शिष्टाचार और नियमों के जानने-माननेवाले हैं । रमापति को दु:ख होता है कि उसकी पत्नी के मोटे दिमाग में कस्बे का विशेषत्व घुस नहीं पाता । रमापति सोचता है कि उचित समय आने पर राजेश्वरी को वास्तविकता का पता स्वयं ही लग जाएगा और वह तब कस्बे का गुणगान करने लगेगी है ।

एक दिन रमापति से मिलने कोई विद्यालय में आ धमकता है । रमापति उसे ठीक से पहचान नहीं पाता । वह आगन्तुक रमापति से ढेर सारी बातें करता है । वह अतीत को कुरेदकर उसक सामने रख देता है । पर रमापति उस आगंतुक की बाजों में आत्मीय स्तर पर शरीक नहीं हो पाता । उसे लगता है कि वह आगंतुक अपनेक्षित रूप से उसे पीड़ित कर रहा है । वह अपने भीतर ऊबा हुआ सा महसूस करता है । उस आगंतुक के जाने के बाद रमापति को थोड़ी राहत मिलती है, पर उस आशंका से कि वह फिर कभी आकर उसे अपनी उलटी-सीधी बातों से उसे परेशान करेगा, वह चिंतित हो उठता है ।

रमापति से मिलने वाला वह आगंतुक उसके बच्चपन का दोस्त है । उसका नाम कामेश है । वह मुहल्ले के सभी लड़कों का नेता था । उसके विरोधमें किसी को बोलने को साहस नहीं होता था । यानी, वह बड़ा दबंग था । उसकी रुचि पढ़ने की अपेक्षा खेलने में अधिक थी । इसी वजह से उसकी पढ़ाई नौवीं कक्षा से ही रुक गई । कामेश से रमापति इस अकस्मात मिलन के पूर्व केवल दोबार ही मिल सका है । दोबार की भेंट में रमापति को कामेश ने रेलवे में अस्थायी नौकरी करने तथा पान की दुकान के फायदे के चलने की बात बताई है । तब से रमापति की भेंट कामेश से नहीं हो पाई है । इतने दिनों के बाद वह आज अचानक मिला है । उसने रमापति को बताया है कि वह बस-कम्पनी की मरम्मत के कारखाने में काम कर रहा है ।

घर आकर रमापति अपनी पत्नी को कामेश से सावधान रहने को कहता है, क्योंकि वह कभी भी आकर उन्हें अपने व्यवहार से परेशान कर सकता है । रमापति की पत्नी राजेश्वरी कहती है- ''अच्छा यह बात है ! तो अब आप चुप रहिए, मैं निपट लूँगी उससे ।''

एक दिन कामेश रमापति के घर आता है ओर अतीत की जुगाली करने लगता है । उस जुगली से रमापति प्रभवित नहीं होता, पर राजेश्वरी को सुख मिलने लगता है । कामेश के प्रति रमापति के रूखे व्यवहार में कोई फर्क नहीं आता । कामेश रमापति और उसकी पत्नी राजेश्वरी को अपने घर आने का आमंत्रण देता है । कामेश के इस आमंत्रण को राजेश्वरी उल्लासपूर्वक स्वीकार करती है । रमापति को भ्रम था कि उसे खाने के लिउ पूछने पर वह तुरत तैयार हो जाएगा, पर ऐसा नहीं होता । खाना खाने के लिए अग्रह करने पर कामेश कहता है, ''बहन, अभी भोजन की क्या जरूरत है ? कभी एक दिन मैं खुद आकर थाली के सामने बैठ जाऊँगा । आज तो घर से भोजन करके ही निकला हूँ ।'' राजेश्वरी कामेश के व्यवहार से बहुत प्रभावित होती है । राजेश्वरी को आश्चर्य होता है कि ऐसे मधुर व्यवहारवाले कामेश को उसका पति बराबर गाली क्यों देता रहता है । राजेश्वरी को कामेश भलेही मधुर व्यवहार का व्यक्ति लगता है, पर रमापति की धारणा में कोई फर्क नहीं आता । वह राजेश्वरी से कहता है ।'' यह कामेश जो देखने में भला सा लगता है, असल में वैसा नहीं है ।'' पता नहीं, रमापति के वास्तवकता यह है कि स्वयं रमापति भी यह नहीं समझ पाता कि उसके भीतर कामेश के लिए घृणा का इतना भाव क्यों है । कहानीकार कहता है । ''मानव का मन बड़ी विचित्र वस्तु है । हजारों धातुओं के रासायनिक सम्मिश्रण से भी अधिक विचित्र उसकी बनावट है । यदि कोई व्यक्ति अपने ही मन की बातों को समझ नहीं सकता, तो दूसरों के मन ही प्रवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण भला कोई कैसे कर सकता है?''

एकदिन कामेश रमापति के घर अचानक आ जाता है, रमापति को यह अच्छा नहीं लगता । वह रमापति से कहता है'', अरे रमापति, क्या बताऊँ तुमसे ! अभी घर पहुँच कर नहा-धोकर भोजन किया । सोना चाहता था, किंतु न जाने क्यों मन तुम्हारी खिंचने लगा । बस, उठकर सीधे चला आय ।'' रमापति कामेश की अनौपचारिकता से खिन्न हो उठता है । कामेश का बिना बुलाए आ पकना उसे एकदम अच्छा नहीं लगता । इसी बीच राजेश्वरी कामेश के सामने आती हैं और उसे पानी के साथ कुछ आहार भी देती है । रमापति राजेश्वरी के इस आचरण से कुढ़ जाता है । कामेश रमापति को बार-बार अपने घर चलने का आग्रह करता है । इस पर रमापति कहता है तुम तो कई बार बुला चुके हो । अब वहाँ जाने या न जाने का निर्णय करना हमारा काम है । मेरी समझ में नहीं आता कि तुम इस तरह हमारी जान क्यों खाते फिरते हो ?'' कामेश ने सपने में भी कभी ऐसा नहीं सोचा था कि रमापति का जवाब इतना कठोर होगा । वह ठगा-सा रह जाता है ।

राजेश्वरी माँ बननेवाली है । नौ माह पूरे होने के पहले ही उसकी तबियत एक दिन अचानक बिगड़ जाती है । कस्बा में उसकी देखरेख ठीक ढंग से नहीं हो सकती । और उस पर उसके घर में कोई औरत भी नहीं है । रमापति कपनी सास को लाने सवेरेवाली बस से ससुराल जाता है । ससा-ससुर के तीर्थ पर निकल जाने के कारण रमापति के बहुत निराशा होती है । वह अपनी माँ को ले आने अपने गाँव जाता है, पर वह भी अपनी बेटी का प्रसव सँभालने उसकी ससुराल चली गई है ।

दूसरे दिन सवेरे खिन्नमन वह अपने आवास पर आता है । आँधी में कटी पतंग की तरह उड़ते हुए, वह गली में मुड़कर घर की ओर देखता है । देखते ही उसके शरीर की नस-नस में खून तीर का तरह दौड़ पड़ता है । घर के आगे लोगों की भीड़ देखकर उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है । आशंकाओं में घिरकर वह अपने भीतर टूटने-सा लगता है । इसी बीच कामेश रमापति को बधाइयाँ देने और मुँह में शक्कर डालने के लिए लोगों को अलग हटाता हुआ दौड़ता हुआ आता है । कामेश की पत्नी भी भीड़ में खड़ी है । वह अपने पति, कामेश से कहती है ।'' आप भी कैसे आदमी है । उन्हें भीतर आने से वहीं रोके खड़े हैं । पिता को न पाकर उधर बेचारा कब से रो रहा है ।

रामपति के बाहर रहने की स्थिति में कामेश और उसकी पत्नी ने ही राजेश्वरी के प्रसव को सँभाला । आज उसे पुत्ररत्न प्राप्त हुआ है तो उन्हीं लोगों के कारण नहीं तो उसके बाहर रहने की स्थिति में राजेश्वरी को सँभालनेवाला कौन था ! यह सोचकर रमापति लज्जा, पश्चाताप और कृतज्ञता के भावों से घिर गया । उसकी आँखों से लज्जा से आनंद के आँसू बहने लगे । उसके आँसू ज्ञानोदय के तरल बिंदु थे मित्रता की पहचान अपने अहं को तोड़े बिना नहीं हो सकती ।

7.3.2 कहानी के पात्र

संस्कार शीर्षक कहानी में तीन पात्र मुख्य हैं-रमापति, रमापति की पत्नी राजेश्वरी और कामेश । कामेश की पत्नी कहानी के अंत में आती है जिसके होने या न होने से कहानी में कोई फर्क नहीं आता ।

7.3.2 रमापति का चरित्र चित्रण

रमापति अंहारग्रस्त पात्र है । वह कुंठाग्रस्त हो अपने को सबसे ऊँचा समझता है । वह अपने समक्ष अपनी पत्नी राजेश्वरी को महत्व नहीं देता । उसकी धारणा हे कि स्त्रियों से कभी बड़ी बातें नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे हमेशा चहार-दीवारी के भीतर पड़ी रहती हैं, इनके मानस का विकसित होने का मौका नहीं मिलता ।

रमापति अपने से इतना प्यार करता है कि उसे मित्रता अच्छी नहीं लगती । यदि कोई मित्र उससे संपर्क बढ़ाना चाहता है तो उसे दिक्कत होने लगती है । वह मनोवैज्ञानिक स्तर पर आत्ममुग्ध है । वह अपने में ही सिकुड़ा-सिमटा रहनेवाला संकीर्ण मनोवृत्ति का पात्र है, जिसे व्यावहारिकता और सामाजिकता से कुछ लेना देना नहीं । रमापति जिस कस्बे में एक स्कूल में शिक्षक के पद पर नियुक्त हुआ है, उसी कस्बे में उसका पुराना मित्र भी अपने भरे-पूरे परिवार के साथ रहता है । निश्छल कामेश को जब यह पता चलता है कि रमापति इस कस्बे में ही शिक्षक है, तब उसे बहुत प्रसन्नता होती है । वह रमापति से मिलता है, रमापति उसके मिलने से प्रसन्न नहीं होता । उसका अहं उसे मित्रता के महत्व से वंचित कर देता है । वह कामेश के बारे में सोचता

है- इस बहतमीज को शायद जरा भी अक्ल नहीं कि जिसके सामने खड़ा वह बातें कर रहा है, वह हाई स्कूल का एक इज्जतदार अध्यापक है । यह तो अपनी ही दुनिया में मस्त है प्रश्न भी कर लेता है और समाधान भी दे देता है । अपनी आँखे उठाकर और नाक झुकाकर बीच-बीच में घूर कर देखने भी लगता है ।

रमापति बिना कारण कामेश से घृणा करता है । वह अचेतन से चालित पात्र है । कामेश के प्रति रमापति में जुगुप्सा का कोई कारण नहीं दिरवाई पड़ता । शायद रमापति के अन्तरमन में यह बात गहरे पैठ गई है कि कामेश संस्कारहीन व्यक्ति है, उससे मिलना-जुलना मेरे मान के विरुद्ध है ।

रमापति अहंग्रस्त होने के बाद भी अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति के प्रति ईमानदार है । पत्नी माँ बननेवाली है, अत: वह अपनी तरफ से उसे हर सुविधा प्रदान करता है । पर नियति के आगे वह लाचार है । प्रसव सँभालने के लिए वह अपनी सास और माँ इन दोनों में से किसी का भी सहयोग प्राप्त नहीं कर पाता, पर अंत में उसको वही सहयोग करता है जिसके प्रति उसमें घृणा का भाव भरा हुआ है । कामेश ही रमापति की अनुपस्थिति में अपनी पत्नी की सहायता से राजेश्वरी को उसके प्रसव काल में उसके सारी व्यवस्था करता है ।

रमापति का चरित्र गत्यात्मक है । जब उसे कामेश और उसकी पत्नी की मदद का अनुभव होता है, तब कृतार्थता का भाव उदित होता है । उसका अहं समाप्त हो जाता है । रमापति का पात्रत्व अहं से अहं विगलन की यात्रा की पात्रत्व है । इस प्रकार रमापति अंत में एक आदर्श पात्र बन जाता है । अपनी जीवनयात्रा में सत्यपथ से भटका हुआ रमापति अंत में अपने घर लौट आता है । उसे अपना और अपने मित्र की पहचान हो जाती है । ज्ञान के उदय से रमापति मानवता से परिचित हो जाता है । उसकी बेवजह की आशंकाएँ समाप्त हो जाती हैं ।

7.2.2. राजेश्वरी का चरित्र चित्रण

राजेश्वरी रमापति की पत्नी है । रमापति और राजेश्वरी चिंतन के विपरीत ध्रुवों पर अवस्थित हैं । रमापति के चिंतन में 'व्यक्ति' की ठसक हैं, अहं का दबाव है, पर राजेश्वरी के चिंतन यें 'व्यक्ति' और अहं की कोई दखल नहीं है । सही अर्थों में वह मानवी है और उसे मनुष्यता की पहचान है ।

राजेश्वरी ममतामयी, उदारमना, भावुक और व्यावहारिक है । उसमें दिखावती व्यावहारिकता नहीं है । उसकी व्यावहारिकता में मानवता का संस्पर्श है । कामेश उसके पति का पुराना मित्र है, बस इसी जानकारी से वह कामेश के प्रति अपनी सारी सरस व्यवहारिकता अर्पित करती है ।

राजेश्वरी इस मत की है कि हमें किसी भी प्रकार का निर्णय लेने के लिए जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए पूरा समझ-परख कर कर ही हमें कोई निर्णय लेना चाहिए । जल्दबाजी में लिया गया निर्णय लेने के चलते ही कामेश के प्रति उसकी धारणा गलत हो गई थी । यदि उसने कामेश के व्यवहार की समीक्षा करने में समय लिया होता तो, शायद वह इस टिप्पणी से बचा होता कि कामेश संस्कारहीन व्यक्ति है, उससे बराबर मिलने-जुलने से मर्यादा का हनन होगा । राजेश्वरी कामेश के प्रति ममत्वसे भरी है, उस ममत्व से जो मानवता का केंद्र होता है, जिससे अपना होने का सुख और सब का होने का संतोष होता है । इस रूप में राजेश्वरी इस कहानी में बहुत कुछ नहीं बोलकर अपने चरित्र की संपूर्ण निश्छलता को हमारे सामने प्रस्तुत कर देती है । उसके शब्द कम बोलते हैं, उसके आचरण ज्यादा बोलते हैं ।

चिंतन के स्तपर भी राजेश्वरी पारंपरिक मर्यादाओं में जीने के बाबजूद आधुनिक है । वह अपने पति की आपत्तिजनक कथन को सिर झुकाकर स्वीकार नहीं कर लेती । अपितु उसका डटकर प्रतिकार करती है । ''क्यों जी ! उसे घूर-घूर कर क्यों देख रहे हो । घूरकर देखने मात्र से चक्कर खाकर नीचे गिर जानेवाली कोई बगुली समझ रखा है क्या मुझे ? राजेश्वरी के इस कथन में नारी की शक्ति का पता चलता है । यहाँ वह आधुनिक नारी की प्रतिनिध के रूप में दिखाई पड़ती है ।

7.2.3 कामेश का चरित्र-चित्रण

'संस्कार' शीर्षक कहानी का दूसरा महत्वपूर्ण पुरुष पात्र कामेश है । आचारण, चिंतन और समग्र व्यक्तित्व के आधार पर यह रमापति से एकदम भिन्न है । रमापति में अहं का प्राधान्य है, वह अचेतन मन से परिचालित है, पर कामेश विगत अहं और निश्छल-निश्छद्म है । कामेश में 'जातीय' संस्कार कूट-कूटकर भरा हुआ । उसके आचरण में सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों की गरिमामयी उपस्थिति है । वह सीधा-सादा और निष्कपट है । सहनशीलता की तो वह प्रतिमूर्ति है । आत्मीयता उसके चरित्र की भूषण है । रमापति उसे झिड़क देता है, पर वह उसे मित्रता का एक आरचरण भर मानता है और अन्यथा नहीं लेता ।

परोपकार और सेवा-भावना उसके व्यक्तित्व की पूँजी है । रमापति की अनुपस्थिति में जब उसकी पत्नी प्रसव -पीड़ा से बेहाल होती है तब वह अपनी पत्नी के साथ राजेश्वरी की पूरी मदद करता है । वह तन-मन और धन से राजेश्वरी की पूरी मदद करता है। इतना करने से वह भी यह रमापति को इसका एहसान नहीं जगता । उसने तो अपेन मित्र होने का फर्ज पूरा किया है ।

कहानी का शीर्षक 'संस्कार' कामेश के सात्विक संस्कारों पर आधृत है । कामेश मानवीय संस्कारों से परिपूर्ण है । वह किसी की मदद करता है तो उसके एवज में कुछ चाहता नहीं है । यानी उसकी मदद निस्पृह है, मानवता की पुकार पर वह किसी की मदद करता है ।

कामेश का चरित्र दिव्य है । उसके चरित्र में इतनी शक्ति है कि रमापति प्रभावित हुए बिना नहीं रहता लज्जा, गलानि, पश्चाताप से रमापति निर्मल हो जाता है । और उसे निर्मल करने के पीछे कामेश के चरित्र की शक्ति ही है । इस तरह कामेश प्रस्तुत कहानी का श्रेष्ठ पात्र है जो कहानी को एक दिशा देता है, और कहानी को सफलता और कथ्य के बिंदु तक पहुँचाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है ।

7.2.4 कामेश का स्वभाव एक गेंद के समान है उस गेंद के समान जिसे जितनी जोर से दीवार से मारिए वह उनती ही जोर से उसकी ओर लौट आएगा । रमापति उसे झिड़कता है, पर वह रमापति की ओर अनायास दौड़ा चला आता है । यह स्थिति उसके निर्मल और स्नेहसिक्त चरित्र को प्रस्तुत करती है ।

कहानी के अन्य तत्त्वों की समीक्षा

कहानी की संवाद योजना पात्रानुकूल एवं संदर्भानुकूल है । कहानी की संवाद योजना से कहानी के विकास को गति मिलती है ।

कहानीकार ने वातावरण की सफल सृष्टि की है । रमापति के मन की परतों को प्रस्तुत करने के लिए

कहानीकार ने जिन समय संदर्भों की सृष्टि की है वे बिंबपूर्ण एवं अर्थपूर्ण हैं । सास और माँ को लाने रमापति ससुराल और घर जाता है, उसे निराशा हाथ लगती है । उसके उस निराशा को मनोवैज्ञानिक वातावरण की सृष्टि के साथ अभिव्यक्त कियागया है । रमापति की आशंकाओं का व्यक्त करने के लिए जिस वातावरण की सृष्टि की गई है, वह भी कथ्य को अर्थ देता है ।

इस कहानी की भाषा स्वाभाविक बिंबपूर्ण, और बोधगम्य है । कहीं-कहीं कव्यात्मकता और दार्शनिकता की सम्मिलित सुगंध भी इस कहानी की भाषा में आकर्षण भरती है ।

7.3 चरित्र-चित्रण देखें, पिछले पृष्ठों पर रमापति, राजेश्वरी ओर कामेश के प्रसंग में

7.4 व्याख्या के अंश

7.3. "फिर जिन स्त्रियों को घर की चार-दीवारी के भीतर ही पड़े-पड़े जीवन बिताने की आदत पड़ चुकी है उन्हें बाहरी दुनियाँ का क्या पता होता है ।"

प्रस्तुत पंक्तियाँ हैं हमारी पाठ्यपुस्तक 'भारत की श्रेष्ठ कहानियाँ की 'संस्कार' शीर्षक कहानी से ली गई है । कहानीकार हैं मधुशोन्तकम राजाराम । यह तेलुगु भाषा में रचित है जिसका अनुवाद डॉ० के० रामानायडु ने किया है ।

रमापति ने कस्बे के संबंध में अपनी धारणा व्यक्त की । कस्बे के संबंध में उसकी धारणा थी कि वह अच्छा कस्बा है । उसकी पत्नी राजेश्वरी ने इसका प्रतिवाद किया और कहा कि इस कस्बे के विषय में अभी मालूम ही कहाँ है ? हमको यहाँ आए अभी दिन ही कितने बीते ? इस पर अहंग्रस्तं रमापति झल्ला उठता है और पूरी स्त्री जाति पर ही टिप्पणी कर बैठता है ।

रमापति की दृष्टि में स्त्रियों की सोच संकीर्ण होती है । उनके अनुभव विस्तृत व्यावहारिक जीवन के नहीं होते । वे घर की चारदीवारीयों में जीवन व्यतीत करती हैं, अत: उनकी दृष्टि में विस्तार नहीं आ पाता । ऐसी स्थिति में उनके द्वारा की गई टिप्पणियों में कुछ भी विश्वास के योग्य नहीं होता ।

रमापति कुंठाग्रस्त है । स्त्रियों के संबंध में की गई उसकी टिप्पणी आधुनिक युग में सही नहीं मानी जा सकती । स्त्रियाँ अब असूर्यपश्या नहीं रही । वे जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषो की समकक्ष है । स्त्रियों के संबंध में रमापति के इस चिंतन से उसके चरित्र का ही पर्दाफाश होता है । वास्तव में राजेश्वरी अनुभव के स्तर पर रमापति से किसी भी अर्थ में कम खुली हुई नहीं है । यह तो रमापति की कुंठा है कि वह राजेश्वरी को चदारदीवारी में कैद स्त्री की तरह प्रस्तुत करता है ।

7.3.2 उम्र के ढलते-ढलते जाना कष्ट और कर्तव्य तन-मन प्रेममयी पत्नी, हँसती-खेलती संतान और जान तक दे सकते वही मित्र भी यदि सत्य न दें तो निश्चय ही यह मरीचिका बन जाता ।"

प्रस्तुत अवतरण 'संस्कार' शीर्षक कहानी से लिया गया है । यह कथन कामेश का है । इसमें कामेश के जीवन के एक सत्य का उद्‌घाटन किया गया है ।